विज्ञान

परिषद् की मुख पत्रिका
अप्रैल 1991
2 रुपये 50 पैसे
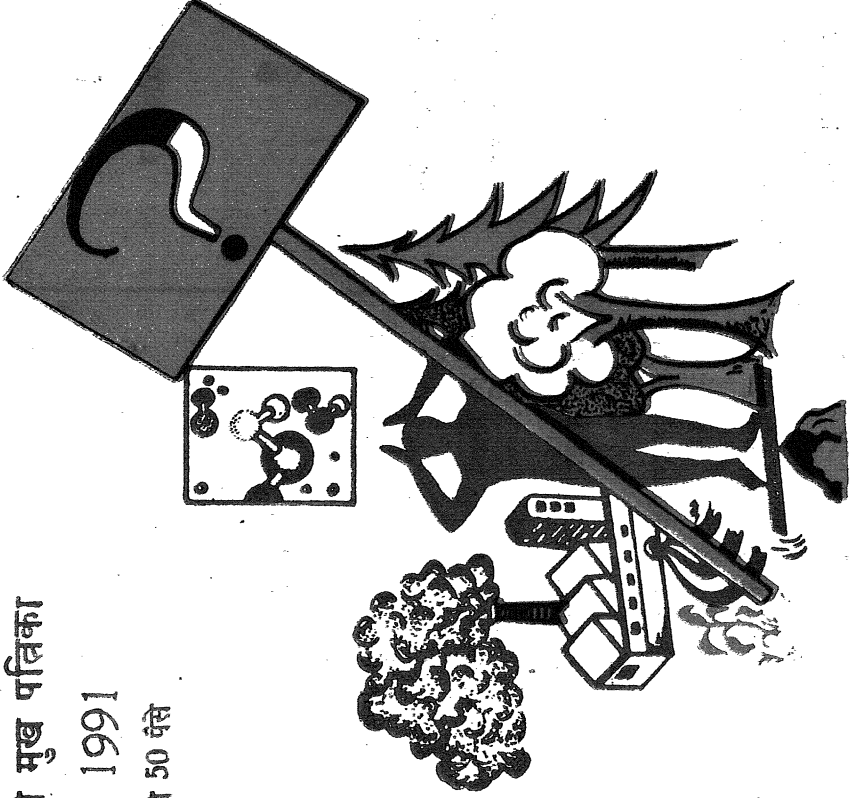
विज्ञान परिषद्, प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 1913; 'विज्ञान' का प्रकाशन अप्रैल 1915

अप्रैल 1991; वर्ष 77, अंक 1

मूल्य

आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत; 500 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 60 रु०

वार्षिक : 25 रु०

एक प्रति : 2 रु० 50 पैसे

प्रकाशक

डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी
प्रधान मंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग

सम्पादक

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

मुद्रक

श्री सरयू प्रसाद पाण्डेय
नागरी प्रेस
186 अलोपी बाग
इलाहाबाद

सम्पर्क

विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद-211002

विज्ञान विस्तार

दौड़ना हमारा काम नहीं

रणबीर सिंह

प्रकृति ने आदमी के शरीर को दौड़ने के लिये नहीं बनाया है। फिर भी हम दौड़ने की बातें करते हैं। कभी हम खेल स्पर्द्धाओं में हिस्सा लेने के लिये दौड़ते हैं तो कभी अपनी सेहत ठीक रखने के लिये। मुसीबत के समय जान बचाने के लिये भी कभी-कभार दौड़ना पड़ता है। आज हमारा जीवन भागमभाग से से भरा हुआ है। महानगरों का जीवन तो खासतौर पर भागदौड़ से भरपूर है लेकिन इस भागदौड़ से सेहत नहीं बनती बल्कि तनाव बढ़ता है। तनाव तो सेहत के लिये खराब होता ही है। हालात चाहे जो भी हों, दौड़ने के बारे में वैज्ञानिकों ने बड़ी रोचक जानकारियाँ हासिल की हैं। अनेक प्रश्नों के वैज्ञानिक उत्तर खोजे जा चुके हैं—जैसे दौड़ना क्या है? दौड़ने के दौरान शरीरक्रियायें किस प्रकार बदल जाती हैं? क्या नियमित दौड़ने से शरीर के कुछ अंगों की संरचना में परिवर्तन लाया जा सकता है? अगर संरचना में ये परिवर्तन स्थायी हो गये हैं तो इनका क्या फायदा या नुकसान होता है? क्या खान-पान और नियमित प्रशिक्षण से भी शरीर की कार्यक्षमता को बढ़ाया जा सकता है? इससे भी महत्वपूर्ण सवाल ये है कि शरीर की सहनशक्ति की अधिकतम सीमायें क्या हैं? अर्थात् एक धावक कब तक, किन परिस्थितियों में कितनी दूर तक सही सलामत रह कर दौड़ता रह सकता है? दो-एक छोटे प्रश्न ये भी हैं कि क्या प्रशिक्षण के अलावा या प्रशिक्षण के साथ-साथ शक्ति-संवर्द्धक दवाएँ लेकर कार्यक्षमता और सहनशक्ति की अधिकतम सीमा, अर्थात् "थ्रेशहोल्ड लिमिट्स' को बढ़ाया जा सकता है और क्या धावक या खिलाड़ी के प्रदर्शन स्तर को वैज्ञानिक तरीके से सुधारा जा सकता है? और क्या धावक या खिलाड़ी के प्रदर्शन स्तर को वैज्ञानिक तरीके से विकसित किये गये जूतों और पोशाकों की मदद से सुधारा जा सकता है?

इन ढेर सारे प्रश्नों के जो अत्यन्त रोचक उत्तर ढूंढे गये हैं उसके पीछे अनेक धावकों, बायोमेडिकल इंजीनियरों और शरीरक्रिया वैज्ञानिकों के अलावा नये पदार्थों को खोजने और उनसे स्पोर्ट्स गियर विकसित करने वाले वैज्ञानिकों, मेडिकल डॉक्टरों और अन्य वैज्ञानिकों की बरसों की मेहनत है।

लाखों साल पहले जब मनुष्य का विकास हो चुका था और उसे ज़िन्दा रहने के लिये हिंसक पशुओं से अपनी रक्षा करनी पड़ती थी, तब मनुष्य को अपनी जान बचाने के लिये दौड़ने की बहुत ज़रूरत पड़ती थी। आज भी दक्षिणी अफ्रीका में कालाहारी मरुस्थल में "बुशमैन" शिकार पर ही ज़िन्दा रहते है और दिनभर में ज़रूरत पड़ने पर सैकड़ों किलोमीटर तक दौड़ लेते हैं। मनुष्य की अनेक आदिवासी और जंगली जातियाँ आज भी शिकार और प्राणरक्षा के लिये दौड़ने की आवश्यकता अनुभव करती हैं। शौक और सेहत ठीक रखने के लिये दौड़ने को अब एक ज़रूरत माना जाता है। महानगरों में आज मनुष्य की जीवन-शैली ऐसी है जिसमे बैठे-बिठाये काम करना पड़ता है। खाना-पीना भी ऐसा हो गया है जिससे आदमी के शरीर में रोग उत्पन्न होने की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं, दिनचर्या में कई स्थितियाँ ऐसी होती हैं जब न चाहते हुए भी आदमी को तनाव झेलना पड़ता है। मोटर-गाड़ियाँ, गन्दे जल और कारखानों की वजह से हवा-पानी भी खराब होता जा रहा है। ऐसे में महानगरों में ज़्यादातर लोगों को हाइपरटेंशन अर्थात् उच्च रक्तचाप या अतितनाव, दिल की बीमारियाँ, डायबिटीज़, तपेदिक और अस्थमा जैसी अन्य सांस की बीमारियाँ आमतौर पर हो जाती हैं। आदिवासी क्षेत्रों या जंगलों में रहने वाले लोगों और गाँव के लोगों में ये बीमारियाँ या तो कम होती हैं या बिलकुल होती ही नहीं क्योंकि उनकी दिनचर्या में शरीर की मेहनत शामिल होती

जनसम्पर्क अधिकारी, भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद्, अंसारी नगर, नई दिल्ली—110029

है। फिर भी स्वस्थ रहने के लिये शहर के लोग अपनी जगह और काम नहीं छोड़ सकते। शहर में शरीर की मेहनत का विकल्प है व्यायाम। तब आदमी के शरीर का हिसाब-किताब देखकर डॉक्टर उसे नियमित रूप से हल्की-फुल्की दौड़ करने की सलाह देते हैं। यही जॉगिंग कहलाती है। इसके विपरीत स्पर्द्धाओं में हिस्सा लेने वाले धावक खिलाड़ियों का मामला दूसरा है। दौड़ने से खिलाड़ी धावकों का शरीर और मन बेशक स्वस्थ रहता हो लेकिन उनका उद्देश्य दौड़ कर नाम कमाना और इनाम पाना है। परन्तु जो लोग सेहत के लिये दौड़ते हैं, ज़्यादातर उसी सन्दर्भ में बात होनी चाहिये। लेकिन आज की मुकाबले की दुनिया में मुकाबलों की ही बात हरेक की जुबान पर होती है। कभी-कभी व्यवसायिक या मुकाबलों में दौड़ने वाले धावक जनता के किसी अच्छे काम के लिये जब धन इकट्ठा करना चाहते हों तब भी दौड़ते हैं।

बहरहाल, जब हम दौड़ने की बात करते हैं तो हम खेल के मैदान में होने वाली छोटी, मध्यम दूरी और मैराथन दौड़ों की बातें जान लेने के बाद यह जानने की चेष्टा नहीं करते कि क्यों एक धावक आगे रहता है और दूसरा पिछड़ जाता है। देखने में दौड़ने वाले सभी व्यक्तियों की कद-काठी, शरीर का भार और दौड़ने का प्रयास एक जैसे प्रतीत होते हैं। लेकिन कहीं न कहीं उनके शरीर की रचना, अभ्यास, प्रशिक्षण और कई अन्य कारणों से एक धावक प्रथम आता है और एक सबसे पीछे रहता है। न केवल पुरुषों में आपस में बल्कि महिलाओं में भी आपस में अनेक वजहों से भिन्न प्रदर्शन हो सकते हैं। महिलाओं और पुरुषों में तो शरीर रचना और शारीरिक क्षमताओं में काफी अन्तर होता है। स्प्रिंट अर्थात् 80 से 100 मीटर की दौड़, 400;1200 और 1500 मीटर की दौड़ और मैराथन दौड़ों में हिस्सा लेने वाले धावकों का शरीर अलग तरह से सधा हुआ होता है। वे अलग प्रकार से शरीर में संचित ऊर्जा भंडार का इस्तेमाल करते हैं। उनकी सांस लेने की दर, ऑक्सीजन खपत की मात्रा और दिल की धड़कनों तथा मांसपेशियों का काम करने का अंदाज़ अलग होता है।

जब कोई व्यक्ति दौड़ रहा होता है तो उसका नर्वस सिस्टम किस प्रकार मांसपेशियों की हरकत, श्वासदर, ऑक्सीजन की खपत, हृदयगति, कार्बन-डाइऑक्साइड की मात्रा और छोड़ने की दर, मांसपेशियों की किस्मों और शरीर द्वारा काम करने से पैदा होने वाली अतिरिक्त गर्मी बाहर फेंककर शरीर को ठंढा रखने की सभी क्रियाओं का संचालन और समन्वय करता है, वह आश्चर्य में डाल देता है।

शरीर जब दौड़ रहा होता है तो मांसपेशियों को अधिक ऊर्जा की ज़रूरत होती है। इसके लिए श्वास के जरिये शरीर में अधिक ऑक्सीजन प्रविष्ट होती है। यह स्वाभाविक क्रिया अर्थात् इनवालेंटरी एक्शन होता है और व्यक्ति का इस पर कोई नियंत्रण नहीं होता। फेफड़ों के अन्दर आये हुए रक्त की लाल कोशिकाओं के माध्यम से ऑक्सीजन रक्त में प्रवेश करती है। लाल रक्त कोशिकाओं पर मौजूद हीमोग्लोबिन ही वह संग्राही है जो ऑक्सीजन के अणु को पकड़कर भिन्न-भिन्न प्रकार की अनेक मांसपेशियों की कोशिकाओं तक पहुँचाता है। एक स्वस्थ पुरुष धावक के शरीर में 4 से 6 लिटर रक्त होता है और एक महिला धावक में 4 से 4.5 लिटर रक्त होता है। एक क्यूबिक मिलिलिटर रक्त में एक करोड़ लाल कोशिकाएँ होती हैं। इस हिसाब से पुरुष में महिला के मुकाबले में रक्त की लाल कोशिकाओं की संख्या भी ज़्यादा होती है। इसीलिए पुरुष धावक महिला के मुकाबले में ऑक्सीजन की अधिक मात्रा श्वास के जरिये खींच सकता है और इस्तेमाल कर सकता है। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि पुरुष धावक की कार्यक्षमता महिला धावक से अधिक होती है। औसतन, महिलाओं के हृदय का आकार भी पुरुष की अपेक्षा छोटा होता है। इसलिए महिला का हृदय रक्त की कम मात्रा को पम्प कर पाता है। इसका मतलब पुरुष की अपेक्षा महिला में मांसपेशियों तक पहुँचने वाली ऑक्सीजन की कुल मात्रा भी कम होती है। एक वजह यह भी है जिससे

महिलाओं द्वारा स्पर्द्धाओं में निकाले गये नतीजे पुरुषों के मुकाबले में थोड़े कम होते हैं। एक अन्य बात यह भी है कि महिलाओं के फेफड़ों का आयतन पुरुषों के मुकाबले में औसतन दस प्रतिशत कम होता है। कम आयतन से ऑक्सीजन प्राप्त करने की दर अर्थात् ऑक्सीजन के रूप में ऊर्जा ग्रहण करने की दर भी कम होती है। बारीकी से बयान किया जाये तो मांस-पेशियों की कोशिकाओं में संचित ऊर्जा भंडारों के इस्तेमाल के लिए ऑक्सीजन की ज़रूरत पड़ती है। इसी बात को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि जिन व्यक्तियों के फेफड़ों का आयतन बड़ा होता है वे समुद्रतल से अधिक ऊँची जगहों, जैसे मैक्सीको सिटी, पर होने वाली खेल प्रतिस्पर्द्धाओं में फायदे में रहते हैं। फेफड़ों के बड़े आयतन के कारण उनमें अधिक वायु समा सकती है जिसका अथ है ऊँची जगहों पर कम ऑक्सीजन वाली स्थितियों में औरों के मुकाबले में अधिक ऑक्सीजन खींच लेना।

परन्तु शोध करने वाले वैज्ञानिकों का यह कहना है कि चूंकि मुकाबला पुरुष-पुरुषों और महिलाओं-महिलाओं में होता है न कि पुरुषों और महिलाओं में, इसलिए मुकाबले में जीत तय करने में शरीर रचना के अलावा प्रशिक्षण की भूमिका ही महत्त्वपूर्ण होती। हालांकि शक्ति सम्वर्द्धन के लिए बहुत वर्षों से अनेक धावक कुछ "दवाएँ" भी लेते हैं लेकिन इनका सेवन न केवल शरीर के लिए अत्यन्त हानिकारक पाया गया है बल्कि इससे खेल में प्रतियोगियों को समान स्थिति में समान अवसर मिलने और न्यायपूर्ण नतीजों तक पहुँचने में रूकावटें आती हैं। ये दवाएँ जिन्हें एंफीटॅ-माइन्स और एनॅबॉलिक स्टीरायड्स कहते हैं, लेने पर प्रतिबन्ध है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि शरीर की अपनी प्राकृतिक रूप से विकसित क्षमताएँ, प्रशिक्षण और अभ्यास में मौलिक कमियाँ हैं।

प्रशिक्षण के महत्त्व को समझ कर शरीर को बचपन से ही साधने को वरीयता मिल चुकी है। प्रशिक्षण-शालाओं में आजकल उपयुक्त, उच्च वैज्ञानिक तकनीकों के माध्यम से "बायोरिदम्स" को ध्यान में रखकर प्रशिक्षण दिया जाता है। बायोरिदम्स के भीतर चलने वाली चयापचयी क्रिया उतार-चढ़ाव वाली स्थिति है। चौबीस घंटे के चक्र के भीतर दिन व रात की अवधि अ मौजूद तापमान या मोटे तौर पर मौसम से शरी चयापचयी क्रियाएँ घटती-बढ़ती रहती हैं। य गया है कि चौबीस घंटों के दौरान, खासकर की जागने की अवधि के दौरान शरीर के विभिन्न की गतिविधि एक जैसी नहीं होती। कुछ अवधि होती है जब शरीर का एक अंग या संयुक्त रूप से अंग एक खास तरह का काम करने के लिये ज़्यादा सक्षम होते हैं। उदाहरण के तौर पर दौ लिये दोपहर बाद तीन बजे के बाद का समय अच्छा माना गया है। इस दौरान बेहतर प्रदर्शन जा सकता है और अच्छे नतीजे प्राप्त किये जा हैं। खेल प्रदर्शनों को बेहतर बनाने के लिये बा दम्स का इस्तेमाल किया जाना हाल की ही है।

प्रशिक्षण और अभ्यास से साधे हुए एक ध के शरीर में महत्त्वर्ण अंगों में कुछ स्थायी परिवर्त जाते हैं जो कि एक सामान्य कार्य वाले व्यक्ति में नहीं किये जा सकते हैं। छोटी दौड़ में हिस्सा वाले तीव्र गति के धावकों के दिल का आकार सा से कुछ बड़ा हो जाता है। यह बात मैराथन धा में भी देखी गई है। दौड़ने की अवस्था में ज़ ऑक्सीजन खून में मिल सके और मांशपेशियों पहुँच सके, इसलिये यह परिवर्तन स्वाभाविक रू हो जाता है। जब धावक विश्राम की स्थिति में हैं तब उनके दिल की धड़कनें बड़ी धीमी होती एक सामान्य व्यक्ति के मुकाबले में यह स्थिति असम तो प्रतीत होती है लेकिन धावकों को इसका नुकसान नहीं होता। इस स्थिति को "ब्रेडीकार्डि कहा गया है। तीव्रगति के धावकों अर्थात् स्प्रिंटस जंघाओं की मांसपेशियों में टाइप-2 किस्म के ए पाये गये हैं। इनमें अकस्मात अपयोग हो सकने, अ

है। फिर भी स्वस्थ रहने के लिये शहर के लोग अपनी जगह और काम नहीं छोड़ सकते। शहर में शरीर की मेहनत का विकल्प है व्यायाम। तब आदमी के शरीर का हिसाब-किताब देखकर डॉक्टर उसे नियमित रूप से हल्की-फुल्की दौड़ करने की सलाह देते हैं। यही जॉगिंग कहलाती है। इसके विपरीत स्पर्द्धाओं में हिस्सा लेने वाले धावक खिलाड़ियों का मामला दूसरा है। दौड़ने से खिलाड़ी धावकों का शरीर और मन बेशक स्वस्थ रहता हो लेकिन उनका उद्देश्य दौड़ कर नाम कमाना और इनाम पाना है। परन्तु जो लोग सेहत के लिये दौड़ते हैं, ज्यादातर उसी सन्दर्भ में बात होनी चाहिये। लेकिन आज की मुकाबले की दुनिया में मुकाबलों की ही बात हरेक की जुबान पर होती है। कभी-कभी व्यवसायिक या मुकाबलों में दौड़ने वाले धावक जनता के किसी अच्छे काम के लिये जब धन इकट्ठा करना चाहते हों तब भी दौड़ते हैं।

बहरहाल, जब हम दौड़ने की बात करते हैं तो हम खेल के मैदान में होने वाली छोटी, मध्यम दूरी और मैराथन दौड़ों की बातें जान लेने के बाद यह जानने की चेष्टा नहीं करते कि क्यों एक धावक आगे रहता है और दूसरा पिछड़ जाता है। देखने में दौड़ने वाले सभी व्यक्तियों की कद-काठी, शरीर का भार और दौड़ने का प्रयास एक जैसे प्रतीत होते हैं। लेकिन कहीं न कहीं उनके शरीर की रचना, अभ्यास, प्रशिक्षण और कई अन्य कारणों से एक धावक प्रथम आता है और एक सबसे पीछे रहता है। न केवल पुरुषों में आपस में बल्कि महिलाओं में भी आपस में अनेक वजहों से भिन्न प्रदर्शन हो सकते हैं। महिलाओं और पुरुषों में तो शरीर रचना और शारीरिक क्षमताओं में काफी अन्तर होता है। स्प्रिंट अर्थात् 80 से 100 मीटर की दौड़, 400;1200 और 1500 मीटर की दौड़ और मैराथन दौड़ों में हिस्सा लेने वाले धावकों का शरीर अलग तरह से सधा हुआ होता है। वे अलग प्रकार से शरीर में संचित ऊर्जा भंडार का इस्तेमाल करते हैं। उनकी सांस लेने की दर, ऑक्सीजन खपत की मात्रा और दिल की धड़कनों तथा मांसपेशियों का काम करने का अंदाज अलग होता है।

जब कोई व्यक्ति दौड़ रहा होता है तो उसका नर्वस सिस्टम किस प्रकार मांसपेशियों की हरकत, श्वासदर, ऑक्सीजन की खपत, हृदयगति, कार्बन-डाइऑक्साइड की मात्रा और छोड़ने की दर, मांसपेशियों की किस्मों और शरीर द्वारा काम करने से पैदा होने वाली अतिरिक्त गर्मी बाहर फेंककर शरीर को ठंडा रखने की सभी क्रियाओं का संचालन और समन्वय करता है, वह आश्चर्य में डाल देता है।

शरीर जब दौड़ रहा होता है तो मांसपेशियों को अधिक ऊर्जा की जरूरत होती है। इसके लिए श्वास के जरिये शरीर में अधिक ऑक्सीजन प्रविष्ट होती है। यह स्वाभाविक क्रिया अर्थात् इनवालेंटरी एक्शन होता है और व्यक्ति का इस पर कोई नियंत्रण नहीं होता। फेफड़ों के अन्दर आये हुए रक्त की लाल कोशिकाओं के माध्यम से ऑक्सीजन रक्त में प्रवेश करती है। लाल रक्त कोशिकाओं पर मौजूद हीमोग्लोबिन ही वह संग्राही है जो ऑक्सीजन के अणु को पकड़कर भिन्न-भिन्न प्रकार की अनेक मांसपेशियों की कोशिकाओं तक पहुँचाता है। एक स्वस्थ पुरुष धावक के शरीर में 4 से 6 लिटर रक्त होता है और एक महिला धावक में 4 से 4.5 लिटर रक्त होता है। एक क्यूबिक मिलिलिटर रक्त में एक करोड़ लाल कोशिकाएँ होती हैं। इस हिसाब से पुरुष में महिला के मुकाबले में रक्त की लाल कोशिकाओं की संख्या भी ज्यादा होती है। इसीलिए पुरुष धावक महिला के मुकाबले में ऑक्सीजन की अधिक मात्रा श्वास के जरिये खींच सकता है और इस्तेमाल कर सकता है। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि पुरुष धावक की कार्यक्षमता महिला धावक से अधिक होती है। औसतन, महिलाओं के हृदय का आकार भी पुरुष की अपेक्षा छोटा होता है। इसलिए महिला का हृदय रक्त की कम मात्रा को पम्प कर पाता है। इसका मतलब पुरुष की अपेक्षा महिला में मांसपेशियों तक पहुँचने वाली ऑक्सीजन की कुल मात्रा भी कम होती है। एक वजह यह भी है जिससे

महिलाओं द्वारा स्पर्द्धाओं में निकाले गये नतीजे पुरुषों के मुकाबले में थोड़े कम होते हैं। एक अन्य बात यह भी है कि महिलाओं के फेफड़ों का आयतन पुरुषों के मुकाबले में औसतन दस प्रतिशत कम होता है। कम आयतन से ऑक्सीजन प्राप्त करने की दर अर्थात् ऑक्सीजन के रूप में ऊर्जा ग्रहण करने की दर भी कम होती है। बारीकी से बयान किया जाये तो मांसपेशियों की कोशिकाओं में संचित ऊर्जा भंडारों के इस्तेमाल के लिए ऑक्सीजन की ज़रूरत पड़ती है। इसी बात को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि जिन व्यक्तियों के फेफड़ों का आयतन बड़ा होता है वे समुद्रतल से अधिक ऊँची जगहों, जैसे मैक्सीको सिटी, पर होने वाली खेल प्रतिस्पर्द्धाओं में फायदे में रहते हैं। फेफड़ों के बड़े आयतन के कारण उनमें अधिक वायु समा सकती है जिसका अथ है ऊँची जगहों पर कम ऑक्सीजन वाली स्थितियों में औरों के मुकाबले में अधिक ऑक्सीजन खींच लेना।

परन्तु शोध करने वाले वैज्ञानिकों का यह कहना है कि चूंकि मुकाबला पुरुष-पुरुषों और महिलाओं-महिलाओं में होता है न कि पुरुषों और महिलाओं में, इसलिए मुकाबले में जीत तय करने में शरीर रचना के अलावा प्रशिक्षण की भूमिका ही महत्त्वपूर्ण होती। हालांकि शक्ति सम्वर्द्धन के लिए बहुत वर्षों से अनेक धावक कुछ "दवाएँ" भी लेते हैं लेकिन इनका सेवन न केवल शरीर के लिए अत्यन्त हानिकारक पाया गया है बल्कि इससे खेल में प्रतियोगियों को समान स्थिति में समान अवसर मिलने और न्यायपूर्ण नतीजों तक पहुंचने में रूकावटें आती हैं। ये दवाएँ जिन्हें एंफीटॅमाइन्स और एनॅबॉलिक स्टीरायड्स कहते हैं, लेने पर प्रतिबन्ध है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि शरीर की अपनी प्राकृतिक रूप से विकसित क्षमताएँ, प्रशिक्षण और अभ्यास में मौलिक कमियाँ हैं।

प्रशिक्षण के महत्त्व को समझ कर शरीर को बचपन से ही साधने को वरीयता मिल चुकी है। प्रशिक्षण-शालाओं में आजकल उपयुक्त, उच्च वैज्ञानिक तकनीकों के माध्यम से "बायोरिदम्स" को ध्यान में रखकर प्रशिक्षण दिया जाता है। बायोरिदम्स शरीर के भीतर चलने वाली चयापचयी क्रियाओं में उतार-चढ़ाव वाली स्थिति है। चौबीस घंटे के एक चक्र के भीतर दिन व रात की अवधि आसपास मौजूद तापमान या मोटे तौर पर मौसम से शरीर की चयापचयी क्रियाएँ घटती-बढ़ती रहती हैं। यह देखा गया है कि चौबीस घंटों के दौरान, खासकर मनुष्य की जागने की अवधि के दौरान शरीर के विभिन्न अंगों की गतिविधि एक जैसी नहीं होती। कुछ अवधि ऐसी होती है जब शरीर का एक अंग या संयुक्त रूप से कुछ अंग एक खास तरह का काम करने के लिये सबसे ज़्यादा सक्षम होते हैं। उदाहरण के तौर पर दौड़ने के लिये दोपहर बाद तीन बजे के बाद का समय सबसे अच्छा माना गया है। इस दौरान बेहतर प्रदर्शन किया जा सकता है और अच्छे नतीजे प्राप्त किये जा सकते हैं। खेल प्रदर्शनों को बेहतर बनाने के लिये बायोरिदम्स का इस्तेमाल किया जाना हाल की ही सोच है।

प्रशिक्षण और अभ्यास से साधे हुए एक धावक के शरीर में महत्त्वर्ण अंगों में कुछ स्थायी परिवर्तन आ जाते हैं जो कि एक सामान्य कार्य वाले व्यक्ति में नोट नहीं किये जा सकते हैं। छोटी दौड़ में हिस्सा लेने वाले तीव्र गति के धावकों के दिल का आकार सामान्य से कुछ बड़ा हो जाता है। यह बात मैराथन धावकों में भी देखी गई है। दौड़ने की अवस्था में ज़्यादा ऑक्सीजन खून में मिल सके और माशपेशियों तक पहुँच सके, इसलिये यह परिवर्तन स्वाभाविक रूप से हो जाता है। जब धावक विश्राम की स्थिति में होते हैं तब उनके दिल की धड़कनें बड़ी धीमी होती हैं। एक सामान्य व्यक्ति के मुकाबले में यह स्थिति असमान्य तो प्रतीत होती है लेकिन धावकों को इसका कोई नुकसान नहीं होता। इस स्थिति को "ब्रेडीकार्डिया" कहा गया है। तीव्रगति के धावकों अर्थात् स्प्रिंटर्स की जंघाओं की मांसपेशियों में टाइप-2 किस्म के उत्तक पाये गये हैं। इनमें अकसमात अपयोग हो सकने, अर्थात्

8 से 10 सेकंड के भीतर ही अत्यधिक मात्रा में उपयोग हो सकने, लायक बहुत ऊर्जा का संचय हो जाता है। अगर हमने ध्यान से अमेरिकन महिला धावक फ्लोरेन्स ग्रिफिथ ज्वायनर (फ्लो जो) और भारतीय धावक पी० टी० उषा के पैरों की मांसपेशियों को देखा हो तो यह बात आसानी से प्रकट हो जाती है कि उनकी मांसपेशियाँ उसी आयु की अन्य सामान्य महिला के मुकाबले में बड़े आकार की और अधिक शक्तिशाली दिखाई देती हैं। स्प्रिंट मुकाबले ज़्यादातर एरेबिक अर्थात् वायुजीवी होते हैं जिनमें चंद सेकंडों में ही अत्यधिक ऑक्सीजन की खपत होती है। लेकिन आश्चर्यजनक बात यह है कि जिस अनुपात और मात्रा में ऑक्सीजन का सेवन किया गया है उतनी ही मात्रा में कार्बनडाइऑक्सीजन श्वास के जरिये बाहर नहीं निकलती है। यह मालूम हुआ है कि मांसपेशियों में अत्यधिक तनाव और कार्य के दौरान लेक्टिक अम्ल उत्पन्न होता है। उत्तकों में इसके जमाव से आसपास की नर्वस् प्रभावित होती हैं। चूंकि लेक्टिक अम्ल का संचय मांसपेशियों के लिये हानिकारक होता है, इसलिये उत्तकों में मौजूद नर्वस् मस्तिष्क तक इसकी खबर ले जाती हैं ताकि शरीर विश्रामपूर्ण मुद्रा में आ जाये। परन्तु लेक्टिक अम्ल से पैदा हुई दर्द की अनुभूति को शरीर के भीतर मौजूद कार्बनडाइऑक्साइड एक सुरक्षा कवक की तरह दबा कर रखती है। अगर ऐसा न हो तो स्प्रिंट मुकाबले के बाद धावक की जान पर भी आ बनती है। विकासक्रम में मानव के भीतर इस गैस को सहने की क्षमता और विशेष स्थितियों के लिये इसकी जरूरत विकसित हो गई है। स्प्रिंट धावकों के विपरीत मैराथन धावकों में पैर की मांसपेशियों में टाइप-2 उत्तक की अपेक्षा टाइप-1 उत्तक ज़्यादा पाया गया है। यह परिवर्तन भी प्रशिक्षण और अभ्यास की वजह से ही होता है। आसल में पहले मांसपेशियों में टाइप-2 किस्म का वायुजीवी उत्तक होता है। परन्तु नियमित रूप से मैराथन दौड़ से टाइप-2 उत्तक आवायुजीवी टाइप-1 उत्तक में परिवर्तित हो जाता है। टाइप-1 उत्तक कम ऊर्जा का इस्तेमाल करते हैं। लेकिन इसका नुकसान यह होता है कि शरीर जब दर्द की सह्य सीमाओं, अर्थात थ्रेसहोल्ड लिमिट्स, को लांघता है तो लेक्टिक अम्ल न बनने की अवस्था में मस्तिष्क को खतरे का अहसास नहीं होता। इससे अनेक बार मैराथन धावकों की हालत अत्यंत गंभीर हो जाती है और कभी-कभी मृत्यु भी हो जाती है।

दिल, फेफड़े और मांसपेशियों के अलावा टखने के नीचे पैर की तो दौड़ने में बड़ी ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है। हालाँकि आदमी का पैर दौड़ने के लिये विकसित नहीं हुआ है फिर भी हड्डियों, मांसपेशियों और तंतुओं की किस्म और रचना की वजह से पैर में प्राकृतिक रूप से एक स्प्रिंग मोजूद है। पैर का यह स्प्रिंग तलुओं की ढालू बनावट की वजह से अस्तित्व में है। यही स्प्रिंग या लोच हमारी चाल और शारीरिक संतुलन के लिये जरूरी है। इस कुदरती स्प्रिंग की वजह से दौड़ने में बहुत सहूलियत मिलती है। इसकी वजह से शरीर को कम ऊर्जा खर्चनी पड़ती है। पहले जमाने में धावक नंगे पैर ही साफ़ और समतल कच्ची भूमि से सम्पर्क रखकर दौड़ते थे। लेकिन हाल के कुछ वर्षों में धावकों के लिये विशेष स्पोर्ट्स शूज और सिंथेटिक ट्रैक का प्रचलन हो गया है। सफाई रखने और चोट से बचने के लिये ये उपाय कारगार तो रहे पर इससे पैर की कुदरती लोच और स्प्रिंग प्रभाव को बड़ा आघात लगा है। ज़्यादा नुकसान "हाई-टैक" स्पोर्ट्स शूज़ ने किया है। वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार सबसे अच्छा स्पोर्ट्स शू पहनने के बाद भी धावक के पैर की लोच में निहित 40 प्रतिशत ऊर्जा का ही इस्तेमाल हो पाता है और बाकी की ऊर्जा बेकार हो जाती है। स्मरणीय है कि भारत के मशहूर धावक फ्लाइंग सिख मिल्खा सिंह ने नंगे पैर दौड़कर ही भारत को ओलंपिक प्रतिस्पर्द्धा में चतुर्थ स्थान दिलाया था। हाल के एशियायी खेलों में भारतीय मैराथन धावक बहादुर सिंह भी नंगे पैर दौड़ते हैं। इस समय दुनिया का सबसे बढ़िया स्पोर्ट्स शू भी हमारे पैर के कुदरती स्प्रिंग और कार्य क्षमता का मुकाबला नहीं कर सकता। वैसे ऐसा जूता विकसित

करते के प्रयास जारी हैं जो मानव पैर के बराबर सक्षम होंगे।

दौड़ने के लिये हमें जिस शक्ति की जरूरत पड़ती है वह हमें अमीनो अम्लों, फैट्स यानि चिकनाई और ग्लूकोज के रूप में विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों से ही प्राप्त होती है। इसके अलावा अन्य आवश्यक चयापचयी क्रियाओं के लिये विटामिनों, लवणों और धातुओं का स्रोत भी भोजन ही है। हालांकि खेल जगत् में मांसाहारी और शाकाहारी भोजन के चुनाव का कार्य क्षमता या प्रदर्शन पर अनुकूल/प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की मान्यताएँ प्रचलित हैं परन्तु शोध से यह साबित हुआ है कि खान-पान बेहतर प्रदर्शन के लिये निर्णायक की भूमिका अदा नहीं करते। केवल बेहतर प्रशिक्षण और अभ्यास ही धावक की क्षमता तय करने में निर्णायक की भूमिका अदा करते पाये गये हैं। अनेक वैज्ञानिक शोधों से यह पता चला है कि खिलाड़ी को औसतन 3000 किलोकैलोरी ऊर्जा की प्रतिदिन जरूरत होती है। इसलिये भोजन के माध्यम से इससे अधिक ऊर्जा प्राप्त करना उचित नहीं है। विशुद्ध रूप में पोषक तत्वों को लेना तो और भी नुकसानदायक बात है। आजकल बाजार में ऐसे खाद्य उपलब्ध हैं जिन्हें यह कह कर बेचा जा रहा है कि इसमें अनेक अनिवार्य खाद्यतत्व होते हैं जिनके सेवन से खिलाड़ी का प्रदर्शन स्तर सुधरता है और उन्हें थकान भी कम होती है, ऐसा करना न केवल अनैतिक प्रचार है बल्कि खिलाड़ियों को भ्रमित किया जाता है। इस सम्बन्ध में खिलाड़ियों को विज्ञापनों पर भरोसा करने की बजाय हैदराबाद में राष्ट्रीय पोषण संस्थान द्वारा प्रकाशित 'खिलाड़ियों के लिये उचित आहार'' नामक पुस्तक को पढ़ना चाहिये। □□

रेडियोसक्रिय विकिरणों के उपयोग एवं दुष्प्रभाव

डॉ० डी० डी० ओझा एवं प्रो० आर० के० मेहता

विज्ञान की प्रगति स्वतन्त्र एवं संयुक्त रूप से किये गए विभिन्न अन्वेषणों द्वारा होती है। हेनरी बेक्वरल द्वारा रेडियो सक्रियता की खोज तथा पीरे एवं मेरी क्यूरी द्वारा रेडियम की खोज ने इस क्षेत्र में अद्वितीय ख्याति प्राप्त की है। रेडियो सक्रियता के चमत्कारी विकास में अनेक शोधकर्त्ताओं का प्रमुख योगदान रहा है। रदरफोर्ड ने विभिन्न प्रयोग करके रेडियोसक्रिय किरणों के गुणों का अध्ययन किया था। परमाणु विघटन के फलस्वरूप तीन प्रकार के विकिरण उत्सर्जित होते हैं। इन्हें एल्फा विकिरण, बीटा विकिरण एवं गामा विकिरण कहते है। एल्फा विकिरण में धन आवेशयुक्त परमाणु होते हैं, इन्हें हीलियम का नाभिक भी कहा जा सकता। बीटा विकिरण इलेक्ट्रॉन से बनी होती है तथा गामा विकिरण लगभग एक्स-किरणों के अनुरूप गुण वाले विकिरण होते हैं।

इन विकिरणों के अनेक उपयोग हैं। इनके कुछ प्रमुख उपयोगों की चर्चा इस लेख में नीचे की जा रही है।

विकिरणी चित्रण : एक्स-किरणों का उपयोग धातु को ढालकर बनाई गई वस्तुओं को बिना तोड़े ही उनके आंतरिक भाग की जानकारी प्राप्त करने के लिए किया जाता है। एक्स-किरणें धातु को बेधकर फोटो-पायस (Photographic emulsion) को प्रभावित कर देती हैं। इस प्रकार प्राप्त प्रतिबिम्ब की सहायता से उस वस्तु में त्रुटियों अथवा दोषों को ज्ञात किया जा सकता है। रेडियम के स्थान पर प्राय: ^{60}CO का उपयोग विकिरणी चित्रण में प्रयुक्त किये

ब्रह्मपुरी, हजारी चबूतरा, जोधपुर—342001

जाने वाले न्यूक्लाइडों में उल्लेखनीय न्यूक्लाइड है। ^{145}Sm ($t_{\frac{1}{2}}=360$ दिन) ^{153}Gd ($t_{\frac{1}{2}}=236$ दिन) और ^{170}Tm ($t_{\frac{1}{2}}=129$ दिन)

रेडियो न्यूक्लाइडों से प्राप्त विद्युत शक्ति— जब किसी रेडियो स्रोत से प्राप्त एल्फा व बीटा कणों तथा गामा किरणों का द्रव्य में अवशोषण होता है, तब विकिरण-ऊर्जा उष्मा में परिणत हो जाती है। इस उष्मा से विद्युत् या अन्य प्रकार की शक्ति प्राप्त की जा सकती है। इस कार्य के लिए एल्फा एवं बीटा कण अधिक उपयोगी होते है। ये विकिरण को सरलता से रोकते हैं तथा अपनी ऊर्जा को उष्मा के रूप में अवशोषक को देते हैं। ऐसे रेडियो न्यूक्लाइड की अर्ध आयु अत्यल्प भी नहीं होनी चाहिए, अन्यथा उसकी सक्रियता और उष्मा मोचन की दर एकदम तेज़ी से गिर जाएगी। अमेरिका तथा सोवियत संघ में ताप-वैद्युत-शक्ति-जनित्रों में ^{90}Sr, ^{137}Cs, ^{144}Ce, ^{147}Pm, ^{210}Po, ^{238}Pu, ^{242}Cm, तथा ^{244}Cm के न्यूक्लाइडों का प्रयोग किया किया जाता है।

रेडियो-आइसोटोपों का उष्मा स्रोतों में उपयोग—रेडियों सक्रिय न्यूक्लाइड में उष्मा ऊर्जा के सघन स्रोत हो सकते हैं। इस तथ्य का उपयोग कई अंतरिक्ष सम्बन्धित शोध कार्यों में किया जाता है। निम्न प्रणोद-रॉकेटों में नोदक गैस हाइड्रोजन को गर्म करने के लिए किसी रेडियो सक्रिय पदार्थ जैसे ^{147}Pm, ^{314}Poअथवा ^{238}Pu की ऊर्जा का उपयोग किया जाता है।

विकिरण द्वारा खाद्य पदार्थों का संरक्षण— खाद्य पथार्थों के सड़ने का कारण उन पर विभिन्न सूक्ष्मजीवाणुओं की क्रियाओं का होना है। खाद्य-परिरक्षण की परम्परागत विधियों जैसे पास्तीकरण, डिब्बों में बन्द करना और प्रशीतीकरण में सूक्ष्मजीव या तो उष्मा द्वारा मर जाते है या ठंड के कारण निष्क्रिय हो जाते हैं। जीवाणुओं को मारने के लिए आवश्यक विकिरण की मात्रा सूक्ष्मजीवों की प्रकृति पर निर्भर करती है। खाद्य-पदार्थों, मुख्यतः मांस, अंडे, मछली और और फलों का परिरक्षण गामा किरणों, त्वरित इलेक्ट्रॉनों अथवा एक्स-किरणों द्वारा उद्भासित करके किया जाता है। इसी प्रकार विकिरणों के प्रयोग से स्ट्रॉबेरी, नांरगी, नींबू, मीठी-चेरी, जामुन, खुबानी आदि फलों को सड़ने से बचाया जा सकता है।

विकिरण द्वारा विसंक्रमण : परम्परागत विधियों के अनुसार अस्पतालों में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं को गर्म करके विसंक्रमित किया जाता है, परन्तु कुछ पदार्थों को जिनमें पट्टियाँ, हाइपोडर्मिक पिचकारियाँ और शल्यक्रिया सीवन भी शामिल हैं, विकिरण द्वारा विसंक्रमित किये जाते हैं।

विकिरण द्वारा नाशक-कीड़ों की रोकथाम : कीड़े खड़ी फ़सलों और मवेशियों को अत्यधिक हानि पहुंचाते हैं। अमेरिका के अनेक वैज्ञानिकों ने कीड़ों की संख्या को नियंत्रित करने के लिए विकिरण का प्रयोग किया है। इसमें ^{60}CO का महत्वपूर्ण योगदान है। इसी प्रकार की मक्खियों, कार्न बोरर, जिप्सी एवं काडलिंग पतिंगों, ट्सी-ट्सी मक्खियों तथा एनोफेलीज़ मच्छरों का उन्मूलन भी विकिरण द्वारा सरलता से किया जा सकता है।

वनस्पतियों में विकिरण-उत्परिवर्तन : वनस्पतियों की नई क़िस्मों को पैदा करने के लिए भी विकिरण का प्रयोग किया गया है। परम्परागत प्रक्रिया के अनुसार ईच्छित उत्परिवर्तनों की समय-समय पर, स्वत: प्रकट होने तक प्रतीक्षा की जाती है और फिर संकरण तथा वरण द्वारा जिस पौधे में परिवर्तन प्रमुख होता है, उसका विकास किया जाता है। कुछ रसायन उत्परिवर्तनों को प्रेरित कर सकते हैं, परन्तु विकिरण-उद्भासन द्वारा उत्परिवर्तक स्वरूपों का उत्पादन अधिक सरल हो गया है। वनस्पतियों की कई स्पीशीज़ का किसी न किसी रूप में विकिरण द्वारा उद्भासन किया जा चुका है और कई लाभकारी उत्परिवर्तन भी प्राप्त हुए है, जैसे उपज में वृद्धि, कालीदाख की अधिक रोग प्रतिरोधिता, अच्छी क़िस्म और बड़े फल, जौ, सन, जूट, सेम एवं अन्य वनस्पतियों की विकासशीलता में परिवर्तन आदि।

विकिरणों के विविध प्रयोग : उपकरणों एवं घड़ियों के डायलों पर स्वयंदीप्त पेंटों का लम्बे समय से उपयोग किया जाता रहा है। ऐसे पेंट का निर्माण फॉस्फोरस में प्राकृतिक रेडियो सक्रिय पदार्थ मिलाकर किया जाता है। कुछ वायुयानों में आइसोटोप स्रोतों का ऐसे संकेतों के लिए उपयोग किया जाता है जो बिजली के चले जाने पर भी अँधेरे में दिखाई देते हैं।

स्थिर विद्युत् के कारण कागज़, कपड़े, रबड़ और प्लास्टिक के उद्योगों में आग लगने एवं विस्फोटों का गम्भीर ख़तरा बना रहता है। इन ख़तरों से बचने के लिए बीच कणों द्वारा उत्पादित आयनीकरण का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त ओषधि विज्ञान कृषि एवं उद्योगों में विकिरणों के विविध उपयोग देखे जा चुके हैं। निःसन्देह भविष्य में विकिरण के ऐसे ही अन्य अनेक उपयोगों की आशा की जा सकती है। हाल ही में विभिन्न भू-गर्भ सम्बन्धित समस्याओं जैसे रिचार्ज, एक्वीफर आकार, एक्वीफर मिश्रण, जल बहने की दिशा इत्यादि क्षेत्रों में रेडियो सक्रियता की उपादेयता सिद्ध हुई है।

विकिरण के दुष्प्रभाव : रेडियो सक्रिय पदार्थ से उत्पन्न एक्स किरणें अथवा विकिरण के प्रति अति प्रकटन का ख़तरा वर्तमान शताब्दी के प्रथम दो दशकों में भली-भाँति ज्ञात हो चुका है तथा इनसे मुक्त होने वाले विकिरणों का त्वचा पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है।

जैव प्रभाव—प्रकृति में पाये जाने वाले अथवा त्वस्त्रिों परमाणु भट्टियों में उत्पन्न होने वाले समस्त रेडियो सक्रिय पदार्थों में विकिरण के ख़तरों की संभावना बनी रहती है। ऐसा ज्ञात हुआ है कि रेडियो न्यूक्लाइडों द्वारा उत्सर्जित एल्फा, बीटा व गामा कण, त्वस्त्रिों द्वारा उत्पादित उच्च ऊर्जा वाले प्रोटॉन, अन्य नाभिक एवं त्वस्त्रिों द्वारा उत्पादित इलेक्ट्रॉन तथा परमाणु भट्टियों अथवा अन्य स्रोतों द्वारा प्राप्त न्यूट्रॉन आदि के प्रभाव घातक होते हैं। यह पूर्णतः ज्ञात हो चुका है कि विकीरण आयनीकरण जीवधारियों पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं। जीव द्रव्य पर विकिरण, जल अथवा पदार्थों के साथ परस्पर क्रिया करके अणु अथवा स्वतन्त्र मूलकों के रूप में बहुत सक्रिय होते हैं। वे सजीव कोशिकाओं में विद्यमान विभिन्न अणुओं के साथ द्वितीयक प्रक्रम करते हैं। इन प्रक्रमों के फलस्वरूप एन्ज़ाइम अभिक्रियाओं में बाधा पड़ जाती है तथा न्यूक्लिक अम्लों के आचरणों में परिवर्तन आ जाता है। अन्ततः कोशिकाओं में ऐसे परिवर्तन हो जाते हैं, जिनका सम्पूर्ण शरीर पर प्रभाव स्पष्ट दिखाई देने लगता है। सजीव कोशिकाओं में आणविक क्रियाओं के अतिरिक्त कुछ स्थूल घटनाएँ भी देखने में आती हैं जैसे सम्पूर्ण कोशिका का फैलाव, कोशिका द्रव श्यानता में वृद्धि, कोशिका झिल्ली की बढ़ी हुई पारगम्यता और कुछ दशाओं में कोशिका का विनाश।

शरीर पर प्रभाव—मानव शरीर में ताप और कुछ हद तक पराबैंगनी प्रकाश के प्रति जैसी नैसर्गिक प्रतिक्रिया होती है, वैसी प्रतिक्रिया आयनीकारक-विकिरण के प्रति नहीं होती, जिसके परिणामस्वरूप उस समय प्राणी के अंग पर पड़ने वाले विकिरण का अनुभव किये बिना ही उस अंग को विकिरण से भयानक क्षति हो सकती है। शरीर में विकसित होने वाले लक्षणों का स्वरूप और परिणाम प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। ये लक्षण विकिरण के प्रवेश की गहराई, अंग पर प्रभाव की मात्रा, अवशोषित विकिरण की मात्रा पर तथा उद्भासन की जीर्णता अथवा पुनरावृत्ति आदि पर निर्भर करते हैं।

शरीर पर विकिरण द्वारा किये गये परिवर्तन मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं। कायिक (Somatic) प्रभाव और आनुवंशिक प्रभाव (genetic effect)। कायिक प्रभाव वे हैं, जिन्हें प्रभावित व्यक्ति सीधा अनुभव करता है, जबकि आनुवंशिक प्रभाव प्रभावित व्यक्ति में प्रकट रूप से तो दिखाई नहीं देते हैं, अपितु आने वाली पीढ़ियों में दिखाई देते हैं। कायिक प्रभाव भी दो प्रकार के होते हैं। प्रारम्भिक और विलम्बित। प्रारम्भिक प्रभावों का अनुभव थोड़े समय में ही होने लगता है, जबकि विलम्बित प्रभाव का अनुभव कई

महीनों अथवा वर्षों तक नहीं होता है। मानव शरीर में अति-प्रभावन के कारण होने वाले प्रेक्षित विकिरण-प्रभाव चार चरणों में होते हैं। प्रथम चरण में शिथिलता होती है, जो मितलाता है और उल्टी होती है। यदि प्रभावन अत्यधिक नहीं हुआ, तो इसके पश्चात् दूसरा चरण आता है, जिसमें रोगी अपेक्षाकृत स्वस्थ दिखाई देता है। इस चरण की अवधि कुछ दिनों से लेकर कई सप्ताह तक हो सकती है। विकिरण की मात्रा जितनी अधिक होगी, दूसरे चरण की अवधि उतनी ही कम होगी। तीसरे चरण में शरीर की प्रतिक्रिया सर्वाधिक हो जाती है और रोगी का बचपाना उसके शारीरिक संरचना की इस प्रभाव का प्रतिरोध करने की क्षमता पर निर्भर करता है। इसके कुछ लक्षण हैं: अवसन्नता (Prostration), मंदाग्नि (Loss of Appetite), भार में कमी, ज्वर, हृदय की धड़कन में तेज़ी, अतिसार, मसूड़ों मे रक्त-स्राव और बालों का झड़ना आदि। जहाँ विकिरण की मात्रा इतनी अधिक नहीं पहुँची हो, वहाँ लम्बे समय तक उपचार के पश्चात् ही स्वास्थ्य लाभ होता है। यही चौथा चरण होता है।

रक्त पर विकिरण का प्रभाव यह प्रकट करता है कि लसीकाय-ऊतक (Lymphoid tissues), मज्जा (Bone Marrow) और यकृत, जिनमें रक्त के विभिन्न अवयवों का निर्माण होता है, शरीर के ऐसे क्षेत्र हैं जिन पर विकिरण की तुरन्त अभिक्रिया होती है। इस कारण जठरांत्र प्रदेश, अभिनेत्र लेंस और प्रजनन अंगों सहित उक्त लसीका ऊतक, मज्जा और यकृत को "विकिरण-संवेदी" (Radio Sensitive) ऊतक कहते हैं। इसके विपरीत परिपक्व पेशीय कोशिकाएँ (Mature Cells of Muscles), अस्थि, उपास्थि और केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र विकिरण प्रतिरोधी होते हैं, क्योंकि अपेक्षाकृत अधिक विकिरण ही इनसे संबन्धित स्पष्ट प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं। त्वचा, फेफड़े और यकृत में विकिरण के प्रति मध्यम संवेदनशीलता होती है। विकिरण द्वारा अत्यधिक प्रभावित होने के कारण बाद में होने वाले प्रभावों में आयु घट जाती है, कुछ वर्षों में रक्त-श्वेतामयता (Leukemia) और अन्य प्रकार के कैंसर हो जाते हैं।

अधिकतम अनुमेय विकिरण मात्राएँ : रेडियो सक्रिय पदार्थों, परमाणु भट्टियों और कण-त्वरित्रों से होने वाले विकिरण के सम्भावित हानिकारक प्रभावों को देखते हुए, अतिप्रभावन के विरुद्ध पर्याप्त सावधानियाँ बरतना आवश्यक है। विकिरण-क्रिया का प्रभाव चुम्बकीय-अक्षांश और ऊँचाई के साथ-साथ बढ़ता जाता है। इसके अतिरिक्त पृथ्वी में भी पर्याप्त रेडियम और 40 K जैसे अन्य रेडियो न्यूक्लाइड भी विद्यमान हैं और वायुमण्डल में रेडियम और थोरियम के प्रसर्ग उपस्थित रहते हैं, जिनके कारण आयनीकारक-विकिरण पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होते रहते हैं। सम्पूर्ण शरीर पर लगभग एक दिन की अवधि में पहुँचने वाले अत्यधिक विकिरण मात्राओं के प्रारंभिक सम्बन्धी प्रभावों का सारांश सारणी संख्या—1 में दर्शाया गया है।

सारणी संख्या—1

सम्पूर्ण शरीर पर अत्यधिक विकिरण मात्राओं के प्रारम्भिक प्रभाव

अत्यधिक मात्रा रैडों में	संभावित स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रभाव
0 से 25 तक	किसी प्रकार का प्रेक्षणीय प्रभाव नहीं होता।
25 से 100 तक	रक्त में थोड़ा सा परिवर्तन, परन्तु कोई अन्य प्रेक्षणीय प्रभाव नहीं होता।
100 से 200 तक	5 से 50% रोगियों में तीन घंटों के अन्दर ही वमन और थकान तथा मंदाग्नि।
200 से 600 तक	तीन घंटों के अन्दर 50 से 100% रोगियों में वमन। 300 से अधिक रैडयुक्त रोगियों में दो घंटों के भीतर इनके प्रभाव होने लगेंगे, दो सप्ताह बाद बालों का झड़ना, रक्त में भयंकर परिवर्तन और रक्तस्राव तथा संक्रमण।
600 से 1000 तक	1 घन्टे के भीतर वमन, भयंकर रक्त-परिवर्तन, रक्तस्राव, संक्रमण, बालों का झड़ना आदि। दो महीनों के भीतर 50 से 100% रोगियों की मृत्यु।

विकिरण से सुरक्षा

परमाणु भट्टियों, त्वरित्रों और रेडियो सक्रिय पदार्थों सदृश विकिरण स्रोतों के साथ काम करने वाले कर्मचारियों को विकिरण से बचाने के लिए एक तरीका तो यह है कि काम करने वाले और विकिरण स्रोत के बीच काफी दूरी रखी जाय। दूसरा तरीका यह भी है कि उपयुक्त अवशोषकों अथवा परिरक्षकों का उपयोग किया जाय, जो विकिरण को या तो क्षीण कर दें या उसे अवशोषित कर लें। सुरक्षा के लिए जिन सावधानियों को बरतना आवश्यक है, उनमें प्रमुख निम्न हैं। जहाँ रेडियो सक्रिय पदार्थ विद्यमान हों, वहाँ न तो खाना जमा करना चाहिए, न बनाना और न ही खाना चाहिए तथा त्वचा को खुजलाना भी नहीं चाहिए, जिससे कि शरीर में रेडियोसक्रिय पदार्थ प्रविष्ट न हो सकें। प्रयोगशाला में रबड़ के दस्तानों का उपयोग करके एल्फा कणों से परिरक्षण हो सकता है। न्यूट्रॉनों और गामा किरणों की उच्च बन्धन क्षमता के कारण उनका अवशोषण करना अत्यन्त कठिन होता है। बीटा किरणों के समान ही गामा किरणों के लिए सर्वोत्कृष्ट अवशोषक उच्च घनत्व वाले पदार्थ होते हैं। अतः लेड (सीसा) का प्रयोग करना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णित उपायों द्वारा विकिरण से रक्षा कर मानव जीवन को इसके दुष्प्रभावों से बचाया जा सकता है। ❑❑

खेलों में वन्य-प्राणी

सतीश कुमार शर्मा

वन्य प्राणियों को जगजाहिर करने तथा मनुष्य एवं इन प्राणियों के बीच की दूरी को निरन्तर कम करने का प्रयास खेलों के माध्यम से होता रहा है। कई तरह के खेलों में वन्य प्राणियों तथा पालतू पशुओं को एक प्रतिद्वन्द्वी खिलाड़ी के रूप में मैदानों में उतारा जा रहा है। संसार के कई भागों में भैसों के साथ मनुष्य द्वारा मल्लयुद्ध का खेल एक ऐसा ही उदाहरण है। प्राचीन काल में आखेट को भी एक खेल के रूप में देखा जाता था, जिसमें खूँखार वन्यप्राणी तथा दिलेर मनुष्य आमने-सामने भिड़ते थे। कुछ आरंभिक ओलिम्पिक खेलों में भी निशानेबाजी स्पर्धा जीवित वन्य प्राणियों को लक्ष्य बनाकर संपादित की जाती थी। लेकिन आजकल 'क्ले मॉडेलों' पर यह कार्य किया जाता है ताकि व्यर्थ ही वन्य प्राणियों को मारा न जाये। बन्दूक तथा धनुष द्वारा निशानेबाजी के खेल प्राचीन आखेट खेलों का ही एक रूप हैं।

कुछ खेलों में प्राणियों को प्रतिद्वन्द्वी खिलाड़ी के रूप में न उतार कर सहायक खिलाड़ी के रूप में उतारा जाता है। पोलो में घोड़ों का उपयोग एक सहायक के रूप में ही होता है। कई खेलों एवं आयोजनों में हाथी एवं ऊँटों का भी इसी तरह उपयोग किया जाता है। घुड़दौड़ एवं ऊँट दौड़ कुछ ऐसे ही खेल हैं। सरकस के खेलों में भी अनेक वन्य प्राणी जैसे कबूतर, काकातू, चिपांजी, बन्दर, हाथी, सिंह, बाघ, दरियाई घोड़ा आदि तथा अनेक किस्म के पालतू प्राणी जैसे घोड़ा, कुत्ता, बकरी, ऊँट आदि तरह-के आकर्षक खेल दिखाकर मनुष्यों का दिल जीत लेते हैं।

विदेशों में कई जगह डॉल्फिन नामक जलीय स्तनधारी को रस्सी कुदाई का खेल सिखा कर मनोहारी प्रस्तुतियाँ की जाती है। इधर भारत में बन्दर तथा रीछ को मदारी लोग अनेक आकर्षक खेल सिखा कर गाँव-गाँव घूम कर न केवल अपनी जीविका कमाते हैं अपितु एक प्राचीन कला को भी पीढ़ी दर पीढ़ी जीवित बनाये चले आ रहे हैं।

वन्य प्राणियों का खेलों में एक दूसरा अति महत्त्व पूर्ण रूप है—एक शुभंकर के रूप में उनका प्रदर्शन। ओलिम्पिक तथा एशियाई खेलों में वन्य प्राणियों को

आर्बोरीकल्चरिस्ट, विश्व वानिकी वृक्ष उद्यान, झालाना डूंगरी, जयपुर-302004

एक शुभंकर के रूप में प्रदर्शित करने का सिलसिला लगातार चला आ रहा है। चालू सदी के नवें दशक के ओलिम्पिक तथा ऐशियाई खेलों के शुभंकरों की सूची से यह और भी स्पष्ट हो जायेगा। (सारणी-1)

सारणी 1 : नवें दशक के ओलिम्पिक तथा एशियाई खेलों के शुभंकर

नाम खेल	देश	शहर जहाँ खेलों का आयोजन हुआ	वर्ष	शुभंकर
22 वाँ ओलिम्पिक	रूस	मास्को	1980	भालू (मीशा)
23 वाँ ओलिम्पिक	अमेरिका	लॉस एंजिलस	1984	सैम द ईगल
24 वाँ ओलिम्पिक	द० कोरिया	सियोल	1988	कोरियाई बाघ (होदोरी)
8 वाँ एशियाड	भारत	दिल्ली	1982	हाथी (अप्पू)
9 वाँ एशियाड	द० कोरिया	सियोल	1986	कोरियाई बाघ (होदोरी)
10 वाँ एशियाड	चीन	बीजिंग	1990	पांडा (पैन-पैन)
11 वाँ एशियाड	जापान	हिरोशिमा	9994	फाख्ताओं का जोड़ा (कोको और पोपो)

शुभंकरों को न केवल जीवित रूप में बल्कि मॉडल रूप में भी प्रदर्शित किया जाता है। 1984 लॉस एंजिलस ओलिम्पिक के शुभंकर "सैम द ईगल" का डिजाइन 'वाल्ट डिज्ने प्रोडक्शन' ने तैयार किया। राबर्ट मूरे व उनके साथी इस शुभंकर के निर्माणकर्ता थे। "सैम" की लम्बाई 2 मी० चौड़ाई 2 मी० तथा वजन 23 किलोग्राम था। 8 वें ऐशियाड में जीवित हाथी (अप्पू) को शुभंकर के रूप में प्रदर्शित किया गया। अप्पू को केरल के जंगलों से पकड़ा गया था। हाल ही में चीन में आयोजित 10 वें एशियाड का शुभंकर भी जीवित पांडा को रखा गया।

भालू, बाघ, हाथी, पांडा आदि अनुसूची प्रथम में शामिल वन्य प्राणी हैं, जो आज तेजी से विलुप्त होते जा रहे हैं। जीवित पांडा (*Ailuropoda melanoleuca*) जो चीन में आयोजित एशियाड का शुभंकर था, को 'वर्ल्ड वाइल्डलाइफ फन्ड' ने भी अपना प्रतीक (Mascot) स्वीकार किया हुआ है। पांडा पूर्वोत्तर भारत के वनों, बर्मा तथा चीन के जंगलों में पाया जाता है। किसी जमाने में चीन के जंगलों में पांडों की बहुतायत थी परन्तु वर्तमान में यह प्राणी बोलोग, चेंडू तथा फियान प्रान्तों में मात्र एक हजार के आस-पास संख्या में शेष बचे हैं।

पांडा एक खास किस्म के बाँस पर ही अपना जीवनयापन करता है। चीन में 1970 में इन बाँसों में सामूहिक पुष्पीकरण हो जाने के कारण बाँस वन सूख गये, जिससे कोई सौ से ज्यादा पांडे भूख से तड़प-तड़प कर मर गये। बाँस वनों को साफ़ कर खेती शुरू हो जाने से बड़े पैमाने पर आवासहीनता की समस्या भी पांडों को विलुप्तीकरण की तरफ ले जा रही है। पांडों को इस दयनीय स्थिति से उबारने के लिये चीन सरकार ने 'पांडा रिसर्च प्रोजेक्ट' शुरू किया तथा 10वें एशियाड में इस अनजान सुन्दर कृति को जगजाहिर कर इस प्रजाति को संरक्षण दिलाने हेतु सारे संसार का ध्यान आकृष्ट किया।

प्रत्येक ओलिम्पिक एवं एशियाड के दौरान मेज़-बान देश अपने देश के किसी भी एक महत्वपूर्ण वन्य

णी को शुभंकर के रूप में प्रदर्शित करता है। टेली-
जन, रेडियो तथा समाचार पत्रों के द्वारा शुभंकर
प में परिचय पाकर वह वन्य प्राणी जन-जन तक
हुँचता है। आम आदमी का यह कर्त्तव्य है कि वह
केवल शुभंकरों के प्रतीक वन्य प्राणियों को बल्कि
प्रत्येक वन्यप्राणी प्रजाति के संवर्धन तथा संरक्षण में
अपना योगदान दे ताकि ये प्राकृतिक अमूल्य निधियाँ
आनेवाली पीढ़ियों को प्राकृतिक आवास में जीवित
मिल सकें। □□

ैव-चुम्बकत्व और मस्तिष्क-हृदय रोग निदान

चन्द्रभान शर्मा

विद्युत् और चुम्बकत्व का चोली दामन का साथ
। एक से दूसरे में परिवर्तन के उदाहरण जेनरेटर
र मोटर हैं। बिजली के तारों की कुंडली के बीच
चुम्बक घुमाने में विद्युत्-धारा उत्पन्न होती है और
दि विद्युत-धारा युक्त कुण्डली के मध्य चुम्बक रखा
ये तो वह मोटर की तरह चक्कर लगाने लगेगा।
ा नहीं है कि विद्युत् केवल निर्जीव पदार्थों में ही
ती है, वह जीवित पदार्थों में भी मौजूद है। पेड़-
ों और जन्तुओं में पाई जाने वाली विद्युत् को
-विद्युत् के नाम से पुकारते हैं। मनुष्यों में सम-
ना का संचार नाड़ियों में विद्युत्-संकेतों के संवाहन
होता है। यही नहीं, हृदय और मस्तिष्क की
ायें भी सूक्ष्म विद्युत् स्पंदनों द्वारा संचालित
ती हैं।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि विद्युत्
र चुम्बकत्व को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा
ता। जब विद्युत शरीर के सतत् क्रियाशील अंगों
से हृदय और मस्तिष्क, के कोषों में होकर प्रवाहित
ती है तो उस क्षेत्र में सूक्ष्म, चुम्बकत्व भी उत्पन्न
जाता है। इस चुम्बकत्व को जैव-चुम्बकत्व कहते
। जैव चुम्बकत्व का इतिहास लगभग 20 वर्ष
राना है। यह अब वैज्ञानिकों के आकर्षण का केन्द्र
न गया है क्योंकि इसके द्वारा मनुष्य के मस्तिष्क
हृदय में हो रही सामान्य व असामान्य प्रक्रिया से
म्बन्धित विद्युतीय गतिविधि को सही प्रकार से ज्ञात
किया जा सकता है। अब तक हृदय और मस्तिष्क की
ये अनियमिततायें इलेक्ट्रोकॉर्डियोग्राम तथा इलैक्ट्रो-
एनसिफेलोग्राम नामक यन्त्रों से उपलब्ध सूचनाओं के
आधार पर मालूम की जाती थीं। इन यन्त्रों को
क्रमशः हृदय और मस्तिष्क से इलेक्ट्रोड्स द्वारा जोड़
दिया जाता है। आन्तरिक विद्युतीय गतिविधि के
ग्राफ, जिन्हें इलेक्ट्रोकॉर्डियोग्राम तथा इलेक्ट्रोएनसिफे-
लोग्राफ कहते हैं, या तो यन्त्र के परदे पर देखे जा
सकते हैं या फिर उन्हें कागज पर अंकित कर लिया
जाता है। चिकित्सक इन्हें जाँच कर बता सकते हैं
कि ये अंग ठीक से कार्य कर रहे हैं या उनमें रोग है।
परन्तु इन दोनों की अपनी सीमायें हैं। इलेक्ट्रोऐन-
सिफेलोग्राफ से प्राप्त विद्युत्-संकेत मस्तिष्क के सभी
विद्युत्-स्रोतों से आने वाली सूचनाओं का सम्मिश्रण
है तथा इससे यह सुनिश्चित करना दुष्कर हो जाता
है कि सम्बन्धित स्रोत इलेक्ट्रोड से कितना दूर है तथा
उस संकेत की शक्ति कितनी है।

मानव अंगों में जैव-चुम्बकत्व का पता लगाने के
बाद वैज्ञानिकों ने मैगनेटोकॉर्डियोग्राम तथा मैगनेटो-
एनसिफेलोग्राम नामक यंत्रों का विकास किया है।
इनके विकास में वास्तव में विज्ञान की हाल के वर्षों
में विकसित नई शाखाओं जैसे अतिचालकता तथा
जैव-विद्युत् आदि का महत्वपूर्ण सहयोग है। इन यंत्रों
द्वारा विद्युत् के उद्गम का सही स्थान मालूम हो
जाता है तथा उनकी सही शक्ति का अन्दाजा भी
लगाया जा सकता है।

सम्पादक, 'साइन्स रिपोर्टर', प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, सी० एस० आई० आर०, हिलसाइड
ोड, नई दिल्ली—110012

प्राणी को शुभंकर के रूप में प्रदर्शित करता है। टेलीविजन, रेडियो तथा समाचार पत्रों के द्वारा शुभंकर रूप में परिचय पाकर वह वन्य प्राणी जन-जन तक पहुँचता है। आम आदमी का यह कर्त्तव्य है कि वह न केवल शुभंकरों के प्रतीक वन्य प्राणियों को बल्कि प्रत्येक वन्यप्राणी प्रजाति के संवर्धन तथा संरक्षण में अपना योगदान दे ताकि ये प्राकृतिक अमूल्य निधियाँ आनेवाली पीढ़ियों को प्राकृतिक आवास में जीवित मिल सकें। □□

जैव-चुम्बकत्व और मस्तिष्क-हृदय रोग निदान

चन्द्रभान शर्मा

विद्युत् और चुम्बकत्व का चोली दामन का साथ है। एक से दूसरे में परिवर्तन के उदाहरण जेनरेटर और मोटर हैं। बिजली के तारों की कुंडली के बीच में चुम्बक घुमाने में विद्युत्-धारा उत्पन्न होती है और यदि विद्युत-धारा युक्त कुण्डली के मध्य चुम्बक रखा जाये तो वह मोटर की तरह चक्कर लगाने लगेगा। ऐसा नहीं है कि विद्युत् केवल निर्जीव पदार्थों में ही होती है, वह जीवित पदार्थों में भी मौजूद है। पेड़-पौधों और जन्तुओं में पाई जाने वाली विद्युत् को जैव-विद्युत् के नाम से पुकारते हैं। मनुष्यों में समवेदना का संचार नाड़ियों में विद्युत्-संकेतों के संवाहन से होता है। यही नहीं, हृदय और मस्तिष्क की क्रियायें भी सूक्ष्म विद्युत् स्पंदनों द्वारा संचालित होती हैं।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि विद्युत् और चुम्बकत्व को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। जब विद्युत शरीर के सतत् क्रियाशील अंगों जैसे हृदय और मस्तिष्क, के कोषों में होकर प्रवाहित होती है तो उस क्षेत्र में सूक्ष्म, चुम्बकत्व भी उत्पन्न हो जाता है। इस चुम्बकत्व को जैव-चुम्बकत्व कहते हैं। जैव चुम्बकत्व का इतिहास लगभग 20 वर्ष पुराना है। यह अब वैज्ञानिकों के आकर्षण का केन्द्र बन गया है क्योंकि इसके द्वारा मनुष्य के मस्तिष्क तथा हृदय में हो रही सामान्य व असामान्य प्रक्रिया से सम्बन्धित विद्युतीय गतिविधि को सही प्रकार से ज्ञात किया जा सकता है। अब तक हृदय और मस्तिष्क की ये अनियमिततायें इलेक्ट्रोकॉर्डियोग्राम तथा इलैक्ट्रोएनसिफेलोग्राम नामक यन्त्रों से उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर मालूम की जाती थीं। इन यन्त्रों को क्रमशः हृदय और मस्तिष्क से इलेक्ट्रोड्स द्वारा जोड़ दिया जाता है। आन्तरिक विद्युतीय गतिविधि के ग्राफ, जिन्हें इलेक्ट्रोकॉर्डियोग्राम तथा इलेक्ट्रोएनसिफेलोग्राफ कहते हैं, या तो यन्त्र के परदे पर देखे जा सकते हैं या फिर उन्हें कागज़ पर अंकित कर लिया जाता है। चिकित्सक इन्हें जाँच कर बता सकते हैं कि ये अंग ठीक से कार्य कर रहे हैं या उनमें रोग है। परन्तु इन दोनों की अपनी सीमायें हैं। इलेक्ट्रोऐनसिफेलोग्राफ से प्राप्त विद्युत्-संकेत मस्तिष्क के सभी विद्युत्-स्रोतों से आने वाली सूचनाओं का सम्मिश्रण है तथा इससे यह सुनिश्चित करना दुष्कर हो जाता है कि सम्बन्धित स्रोत इलेक्ट्रोड से कितना दूर है तथा उस संकेत की शक्ति कितनी है।

मानव अंगों में जैव-चुम्बकत्व का पता लगाने के बाद वैज्ञानिकों ने मैगनेटोकॉर्डियोग्राम तथा मैगनेटोएनसिफेलोग्राम नामक यंत्रों का विकास किया है। इनके विकास में वास्तव में विज्ञान की हाल के वर्षों में विकसित नई शाखाओं जैसे अतिचालकता तथा जैव-विद्युत् आदि का महत्वपूर्ण सहयोग है। इन यंत्रों द्वारा विद्युत् के उद्गम का सही स्थान मालूम हो जाता है तथा उनकी सही शक्ति का अन्दाज़ा भी लगाया जा सकता है।

सम्पादक, 'साइन्स रिपोर्टर', प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, सी० एस० आई० आर०, हिलसाइड रोड, नई दिल्ली—110012

सन् 1911 में **कैमरलिंग ऑन्स** नामक वैज्ञानिक ने सबसे पहले अतिचालकता का पता लगाया। सामान्य रूप से विद्युत् के चालक धातु तीन प्रकार के होते हैं। पहले सुचालक—जिनमें होकर विद्युत् आसानी से गुजर जाती है; दूसरे मध्य चालक—जिनमें विद्युत् बहुत कम मात्रा में प्रवाहित होती है और तीसरे कुचालक—जिनमें विद्युत् बिल्कुल प्रवाहित नहीं होती। विद्युत् चालन की क्रिया में वास्तव में धातु के इलेक्ट्रॉन विद्युत् प्रवाह में बाधा उपस्थित करते हैं, जिससे विद्युत् का बहुत-सा भाग ताप के रूप में नष्ट हो जाता है। **कैमरलिंग ऑन्स** ने देखा कि यदि किसी सुचालक का तापक्रम 4 डिग्री केल्विन तक कम कर दिया जाये तो विद्युत् बिना किसी अवरोध के उसमें प्रवाहित होती है। इसी स्थिति को अतिचालकता कहते हैं। आजकल इस क्षेत्र में बहुत तेजी से कार्य हो रहा है तथा यह प्रयत्न किये जा रहे हैं कि ऐसे अतिचालकों का विकास किया जाये जो ऊँचे तापक्रमों पर भी इस गुण को प्रदर्शित कर सकें। अतिचालकों के अनेक सम्भावित उपयोग हैं, विशेष कर उद्योगों और चिकित्सा में।

अतिचालक पदार्थों पर आधारित है एक महत्वपूर्ण युक्ति-जाँसेफसन्स जंकशन। इस युक्ति में अतिचालक पदार्थ की दो सतहों के बीच में किसी कुचालक की एक सतह लगा दी जाती है। इस युक्ति का लाभ यह है कि इसमें वॉल्टेज का परिवर्तन बहुत तेज गति से होता है तथा विद्युत् की खपत भी अत्यन्त कम होती है। यदि किसी अतिचालक तार के लूप में एक से अधिक जाँसेफसन्स जंकशन लगा दिये जायें तो वह उपकरण "स्क्विड" (सुपरकंडक्टिंग क्वांटम इन्टरफियेरेन्स डिवाइस) कहलाता है। "स्क्विड" द्वारा अत्यंत सूक्ष्म वॉल्टेज परिवर्तनों का मापा जा सकता है। मैगनेटोकार्डियोग्राम तथा मैगनेटोऐनसिफेलोग्राम में "स्क्विड" के उपयोग द्वारा विद्युतीय परिवर्तनों से उत्पन्न सूक्ष्म चुम्बकीय संकेतों को आसानी से ज्ञात किया जाता है।

अमेरिका की 'फोर्ड मोटर कम्पनी' के वैज्ञानिक **जेम्स जिमरमान** ने सबसे पहले "स्क्विड" का निर्माण किया और उसमें सतत: सुधार करते रहे। दुर्भाग्य से वे इसका कोई लाभदायक उपयोग नहीं खोज पाये। कहते हैं कि जिमरमान द्वारा विकसित "स्क्विड" इतनी संवेदनशील थी कि जब भी वे अपनी प्रयोगशाला में धातु की कुर्सियों को इधर-उधर करते यह यंत्र इन परिवर्तनों को संकेतों द्वारा प्रदर्शित करता। **जिमरमान** के साथी यंत्र की इस प्रक्रिया को बड़े कौतुहल से देखते।

प्रकृति के नियम बड़े विचित्र हैं। **जिमरमान** द्वारा विकसित उपलब्धि की व्यवहारिक उपयोगिता का श्रेय जाना था इलिनियॉस विश्वविद्यालय के भौतिकशास्त्री **डेविड कोहेन** को। **कोहेन** ने कुछ वर्ष पूर्व ही उच्च ऊर्जा भौतिकी में अपना अध्ययन छोड़ जैवविद्युत् विषय से नाता जोड़ा था। वे हृदय की चुम्बकीय तरंगों को एक चुम्बक-निरपेक्ष कक्ष में चुम्बकीय प्रेरक कुंडली की मदद से मापने का प्रयोग कर रहे थे। उन्होंने मस्तिष्क की चुम्बकीय तरंगों को मापने का प्रयास भी किया, जो हृदय की तरंगों के मुकाबले में 500 गुणा कमज़ोर होती है।

इसी दौरान **कोहेन** के एक सहयोगी ने उन्हें **जिमरमान** द्वारा विकसित "स्क्विड" के बारे में बताया और उनसे सम्पर्क स्थापित करने की सलाह दी। **कोहेन** ने **जिमरमान** को अपने यहाँ यंत्र सहित आने का निमंत्रण दिया।

सन् 1970 वर्ष की पूर्ण संध्या, **कोहेन** की चुम्बक निरपेक्ष प्रयोगशाला में यंत्र स्थापित हो चुका था। ज्यों ही **जिमरमान** ने कक्ष में प्रवेश किया तो **कोहेन** ने देखा कि यंत्र **जिमरमान** के हृदय के चुम्बकीय क्षेत्र को स्पष्ट रूप से दिखा रहा है। **जिमरमान, कोहेन** और **एडगर ऐडिलसेक** (जो **कोहेन** को इस कार्य में आर्थिक सहायता दे रहे थे तथा जिन्होंने उसे **जिमरमान** से मिलने की सलाह दी थी) ने सम्मिलित रूप से "जनरल ऑव एप्लाइड फ़िज़िक्स" में इस प्रयोग के बारे में पहला लेख प्रकाशित किया। यह लेख ही विज्ञान की इस नई शाखा—जैव-चुम्बकत्व की नींव था।

बाद में किये प्रयोगों द्वारा इन वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिखाया कि फेफड़ों में अवरोध का पता भी चुम्बकीय पद्धति से किया जा सकता है। मैगनेटो-ऐनसिफेलोग्राम की मदद से 'मिरगी' के रोगी के मस्तिष्क में मौजूद प्रभावित तन्तुओं के स्थान का सही पता लगाया जा सकता है तथा उन्हें हटाकर रोगी को रोगमुक्त किया जा सकता है। मैगनेटोऐनसिफेलोग्राम तथा मैगनेटोकार्डियोग्राम द्वारा मस्तिष्क तथा हृदय की गति पर गम्भीर ऑपरेशनों के दौरान लगातार निगाह रखी जा सकती है। चूँकि इन यंत्रों का विकास अभी हाल में ही हुआ है अत: ये परम्परागत यंत्रों के मुकाबले में अधिक महँगे हैं। इन्हें सभी बड़े अस्पतालों में स्थापित किये जाने तथा कम खर्चीला बनाने में समय लगेगा। □□

विज्ञान : अस्सी का दशक याद रहेगा

चक्रेश जैन

अस्सी का दशक पूरा बीत जाने के इन क्षणों में जब पीछे मुड़कर देखते हैं तो लगता है कि यह दशक कितना घटनाओं भरा रहा। साइंस की एक अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका के संपादक ने अपनी टिप्पणी में इस दशक के बारे में लिखा है कि यह वह दशक था जब टेक्नॉलॉजी पर मनुष्य का नियंत्रण बढ़ना शुरू हुआ।

कम्प्यूटर सारे दशक दुनिया पर छाया रहा जिसका असर भारत पर भी रहा। जानकारी वाली लहर का आरंभ इसी दशक में हुआ। शोधकर्ता ऐसा कम्प्यूटर बनाने के प्रयत्नों में जुट गये जो मनुष्य की तरह सोच सके। कम्प्यूटर अब केवल गणना यंत्र नहीं रहे। वे शतरंज खेलने, संगीत रचना और रोग निदान जैसे कार्यों के लिए मनुष्य के सहयोगी बनते चले गये। बुद्धिमान मशीनों को बनाने की दौड़ जारी रही। अध्येताओं ने इतने छोटे रोबोट बनाने की दिशा में शोधकार्य किया जो मनुष्य के शरीर में नाव की भाँति चल सके और कहीं भी जो खराबी हो उसे ठीक कर सके।

सुपर कंडक्टर धातु सम्बन्धी अनुसंधान अस्सी के दशक की सबसे बड़ी वैज्ञानिक घटनाओं में से है। दुनिया की अनेक प्रयोगशालाओं में वैज्ञानिक कमरे के तापमान पर एक ऐसी अति चालक धातु बनाने में जुट गये जो ऊर्जा का जरा भी अंश खोए बिना विद्युत् का प्रवाह कर सके। वास्तव में अतिचालक धातुओं के उपयोग अनगिनत हैं।

इसी दशक के उत्तरार्द्ध में कलकत्ता के तीन युवा भौतिकीविदों ने आइंस्टाइन के 'सापेक्षतावाद के सिद्धांत' को चुनौती दी और चर्चा का विषय रहे। ये तीनों अध्येता हैं— **डॉ० अमिताब राय चौधरी, डॉ० अमिताब दत्त** तथा **डॉ० दीपंकर होम**। तीनों वैज्ञानिकों के शोधकार्यों से यह निष्कर्ष निकला कि 'मोर्स संकेतों' से सूचनाओं को प्रकाश से भी अधिक तेज़ गति से भेजा जा सकता है।

बीते दशक में अंतरिक्ष यात्रायें जारी रहीं और मनुष्य की यही आशा बलवती हुई कि वह चन्द्रमा पर बस्ती बसा लेगा। चन्द्रमा पर पहुँचने की बीसवीं वर्षगांठ के समारोह में अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश ने कहा कि चन्द्रमा ने हमें दिशा दी है; लेकिन वहाँ तक पहुँचकर अंतरिक्ष सफलताओं का अंत नहीं हो जाता। इसी दशक में सोवियत संघ ने मंगल ग्रह के अध्ययन के लिए दो 'फोबोस' यान सफलतापूर्वक छोड़े। यह वही दशक था, जिसमें दोनों महाशक्तियों

65 पत्रकार कॉलोनी, कनाड़ियारोड, इन्दौर-452001 वर्ष 1984-1986 के दौरान 'सी. एस. आई, आर. समाचार' नई दिल्ली में संपादकीय मंडल से जुड़ रहे; वर्ष 1987 से 'नई दुनिया' (हिन्दी दैनिक), इन्दौर में सहायक संपादक के पद पर कार्यरत।

ने मंगल ग्रह पर मंगल दीप जलाने की तैयारियाँ शुरू कर दीं। इसी दशक में सोवियत संघ के दो वैज्ञानिकों ब्लादीमीर तितोव और मूसा मनारोव ने स्टेशन 'मीर' अंतरिक्ष में वर्ष भर बिताकर अंतरिक्ष विज्ञान में एक नया इतिहास रचा। अंतरिक्ष में भारत के लिये यह दशक उतार-चढ़ाव का रहा। राकेश शर्मा अंतरिक्ष में पहुँचनेवाले पहले भारतीय बन गये। भारत ने पराई धरती से इन्सैट श्रृङ्खला के चार उपग्रह अंतरिक्ष में स्थापित किये। इन्सैट—1 बी ने करीब सात वर्षों तक तीन उपग्रहों का काम अकेले सँभाला।

इस दशक के पूर्वार्द्ध में मनुष्य की प्रतिरक्षा प्रणाली को पूरी तरह तहस-नहस करनेवाले एड्स विषाणु का पता चला। इस जानलेवा बीमारी से लाखों लोग मर गये और सैकड़ों संक्रमित हो गये। उधर अनेक शोधकर्त्ता एड्स विषाणु को खत्म करने के लिये टीका बनाने के प्रयत्नों में जुट गये। यह प्रयत्न अभी भी जारी है।

पर्यावरण विज्ञानियों के अनुसार अस्सी का दशक इस सदी का सबसे गर्म दशक था। बीते दशक में चेतावनी दी गई कि यदि प्रकृति का संतुलन बिगड़ता रहा और प्रदूषण बढ़ता रहा तो यह पृथ्वी मनुष्य के के रहने लायक नहीं रहेगी। जीव-जन्तु भी नहीं रहेंगे।

इसी दशक के उत्तरार्द्ध में अमेरिका के ऊटा विश्वविद्यालय में कार्यरत दो रसायनविदों डॉ० स्टेनली पोंस तथा डॉ० मार्टिन फ्लीसमेन ने परखनली में नाभिकीय संलयन (न्यूक्लियर फ्यूज़न) द्वारा ऊर्जा पैदाकर दुनिया भर के वैज्ञानिकों को अचंभित कर डाला। इस प्रयोग को 'टेबल टाप' की संज्ञा दी गई है। नाभिकीय संलयन की सफलता का अर्थ होगा ऊर्जा के नये साधनों का विकास। यदि इस खोज की पुष्टि हो जाती है तो सूर्य और हाइड्रोजन बम की शक्ति देनेवाली शक्तियों पर अंकुश करने की दिशा में एक बड़ी उपलब्धि होगी।

इसी दशक में करीब 76 साल बाद 'हेली धूमकेतु' पृथ्वीवासियों को अपना चेहरा दिखाकर विदा हो गया। अनेक प्रकार की कल्पनाओं, किंवदंतियों और घटनाओं को जन्म देनेवाले 'हेली धूमकेतु' का रहस्य अभी पूरी तरह प्रकट नहीं हुआ।

बीते दशक में ब्रिटेन के एक आनुवंशिकी अध्येता डॉ० एलेक जेफरीस ने अपराधियों को पहचानने का एक नया तरीका 'डी० एन० ए० फिंगरप्रिंट' खोज निकाला। इंग्लैंड में इस तकनीक की मदद से एक बलात्कारी को सजा दी गई। दशक का अंत आते-आते अमेरिकी अध्येताओं ने मानव मस्तिष्क कोशिकायें प्रयोगशाला में विकसित करने में ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की।

इसी दशक में सोवियत संघ का शांत कस्बा चेर्नोबिल परमाणु रिएक्टर दुर्घटना से यकायक दुनिया भर में चर्चित हो गया। इस विनाशकारी घटना ने दुनिया को दिखा दिया कि परमाणु टैक्नोलॉजी पर मनुष्य का नियन्त्रण सीमित है।

अस्सी के दशक में धरती के रक्षा कवच ओज़ोन परत को बचाने पर भी सबसे ज़्यादा जोर दिया गया। यह परत सूर्य के पराबैंगनी प्रकाश से हमारी रक्षा करती है। सितम्बर 1988 में मोंट्रियल में 46 देशों के प्रतिनिधियों ने ओज़ोन परत को सबसे ज़्यादा क्षति पहुँचानेवाले रसायन क्लोरोफ्लोरोकार्बन (सी एफ सी) पर 1999 तक पूरी तरह प्रतिबन्ध लगाने की माँग की।

बीते दशक का उत्तरार्द्ध आते-आते भारत ने स्वदेश में ही विकसित 'त्रिशूल', 'पृथ्वी', 'अग्नि' तथा 'नाग' प्रक्षेपास्त्रों को सफलतापूर्वक छोड़ा। हमारे देश में 1983 में प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम शुरू किया गया था। इसी दशक में भारतीय प्रतिरक्षा वैज्ञानिकों ने पहली बार 'हाइपर प्लेन' बना डाला। यह अंतरिक्ष वाहन उड़ान के दौरान अपना ईंधन बना सकता है और उपग्रह छोड़ सकता है। दशक के उत्तरार्द्ध में 'रामन प्रभाव' के साठ वर्ष पूरे होने पर हीरक जयंती मनाई गई। 'रामन-प्रभाव' को लेकर अब तक बारह हज़ार से अधिक शोधपत्र प्रकाशित हो चुके हैं।

ने मंगल ग्रह पर मंगल दीप जलाने की तैयारियाँ शुरू कर दीं। इसी दशक में सोवियत संघ के दो वैज्ञानिकों **ब्लादीमीर तितोव और मूसा मनारोव** ने स्टेशन 'मीर' अंतरिक्ष में वर्ष भर बिताकर अंतरिक्ष विज्ञान में एक नया इतिहास रचा। अंतरिक्ष में भारत के लिये यह दशक उतार-चढ़ाव का रहा। **राकेश शर्मा** अंतरिक्ष में पहुँचनेवाले पहले भारतीय बन गये। भारत ने पराई धरती से इन्सैट श्रृंखला के चार उपग्रह अंतरिक्ष में स्थापित किये। इन्सैट—1 बी ने करीब सात वर्षों तक तीन उपग्रहों का काम अकेले सँभाला।

इस दशक के पूर्वार्द्ध में मनुष्य की प्रतिरक्षा प्रणाली को पूरी तरह तहस-नहस करनेवाले **एड्स विषाणु** का पता चला। इस जानलेवा बीमारी से लाखों लोग मर गये और सैकड़ों संक्रमित हो गये। उधर अनेक शोधकर्त्ता एड्स विषाणु को खत्म करने के लिये टीका बनाने के प्रयत्नों में जुट गये। यह प्रयत्न अभी भी जारी है।

पर्यावरण विज्ञानियों के अनुसार अस्सी का दशक इस सदी का सबसे गर्म दशक था। बीते दशक में चेतावनी दी गई कि यदि प्रकृति का संतुलन बिगड़ता रहा और प्रदूषण बढ़ता रहा तो यह पृथ्वी मनुष्य के के रहने लायक नहीं रहेगी। जीव-जन्तु भी नहीं रहेंगे।

इसी दशक के उत्तरार्द्ध में अमेरिका के ऊटा विश्वविद्यालय में कार्यरत दो रसायनविदों **डॉ० स्टेनली पोंस** तथा **डॉ० मार्टिन फ्लीसमैन** ने परखनली में नाभिकीय संलयन (न्यूक्लियर फ्यूज़न) द्वारा ऊर्जा पैदाकर दुनिया भर के वैज्ञानिकों को अचंभित कर डाला। इस प्रयोग को 'टेबल टाप' की संज्ञा दी गई है। नाभिकीय संलयन की सफलता का अर्थ होगा ऊर्जा के नये साधनों का विकास। यदि इस खोज की पुष्टि हो जाती है तो सूर्य और हाइड्रोजन बम की शक्ति देनेवाली शक्तियों पर अंकुश करने की दिशा में एक बड़ी उपलब्धि होगी।

इसी दशक में करीब 76 साल बाद 'हेली धूमकेतु' पृथ्वीवासियों को अपना चेहरा दिखाकर विदा हो गया। अनेक प्रकार की कल्पनाओं, किंवदंतियों और घटनाओं को जन्म देनेवाले 'हेली धूमकेतु' का रहस्य अभी पूरी तरह प्रकट नहीं हुआ।

बीते दशक में ब्रिटेन के एक आनुवंशिकी अध्येता **डॉ० एलेक जेफरीस** ने अपराधियों को पहचानने का एक नया तरीका 'डी० एन० ए० फिंगरप्रिंट' खोज निकाला। इंग्लैंड में इस तकनीक की मदद से एक बलात्कारी को सजा दी गई। दशक का अंत आते-आते अमेरिकी अध्येताओं ने मानव मस्तिष्क कोशिकायें प्रयोगशाला में विकसित करने में ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की।

इसी दशक में सोवियत संघ का शांत कस्बा चेर्नोबिल परमाणु रिएक्टर दुर्घटना से यकायक दुनिया भर में चर्चित हो गया। इस विनाशकारी घटना ने दुनिया को दिखा दिया कि परमाणु टैक्नोलॉजी पर मनुष्य का नियन्त्रण सीमित है।

अस्सी के दशक में धरती के रक्षा कवच ओज़ोन परत को बचाने पर भी सबसे ज्यादा जोर दिया गया। यह परत सूर्य के पराबैंगनी प्रकाश से हमारी रक्षा करती है। सितम्बर 1988 में मोंट्रियल में 46 देशों के प्रतिनिधियों ने ओज़ोन परत को सबसे ज्यादा क्षति पहुँचानेवाले रसायन क्लोरोफ्लोरोकार्बन (सी एफ सी) पर 1999 तक पूरी तरह प्रतिबन्ध लगाने की माँग की।

बीते दशक का उत्तरार्द्ध आते-आते भारत ने स्वदेश में ही विकसित 'त्रिशूल', 'पृथ्वी', 'अग्नि' तथा 'नाग' प्रक्षेपास्त्रों को सफलतापूर्वक छोड़ा। हमारे देश में 1983 में प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम शुरू किया गया था। इसी दशक में भारतीय प्रतिरक्षा वैज्ञानिकों ने पहली बार 'हाइपर प्लेन' बना डाला। यह अंतरिक्ष वाहन उड़ान के दौरान अपना ईंधन बना सकता है और उपग्रह छोड़ सकता है। दशक के उत्तरार्द्ध में 'रामन प्रभाव' के साठ वर्ष पूरे होने पर हीरक जयंती मनाई गई। 'रामन-प्रभाव' को लेकर अब तक बारह हजार से अधिक शोधपत्र प्रकाशित हो चुके हैं।

अस्सी के दशक में सौर-मंडल के अंतिम छोर तक जाने के प्रयास होते रहे। अमेरिका का वायजर-2 नामक मानव रहित अंतरिक्षयान करीब सात अरब किलोमीटर की सतत यात्रा करके बारह वर्षों बाद नेप्चून (वरुण) ग्रह के समीप पहुँचा। वायजर-2 नेप्चून के नज़दीक पहुँचनेवाला पहला अंतरिक्षयान था। अब तक नेप्चून के आठ चन्द्रमा खोजे जा चुके हैं। एक खगोलविद ने इस उपलब्धि पर अपनी टिप्पणी में कहा—'नेप्चून अब विज्ञान-कथाओं का रोमांचकारी पिंड नहीं रहा। यह वास्तविक नेप्चूर है जिसे हम देख रहे हैं।' दशक का अंत आते-आते अमेरिका ने सौर-मंडल के सबसे बड़े ग्रह बृहस्पति के अध्ययन के लिये 'गैलीलियो अंतरिक्षयान' भेजा। मानवरहित यह यान छह वर्षों तक यात्रा करेगा और टेडे-मेढ़े रास्तों को पार करता हुआ 1995 में बृहस्पति ग्रह के समीप पहुँच जायेगा। इसी दशक के उत्तरार्द्ध में दुनिया का पहला संवाददाता 48-वर्षीय तोयोहिरो अकियामा सोवियत संघ के अंतरिक्ष-यात्रियों के साथ सप्ताह भर अंतरिक्ष में बिताकर सकुशल लौट आया।

अस्सी का दशक गुज़र गया। ब्रह्मांड के बारे में बहुत कुछ जानकारी बढ़ी; लेकिन पृथ्वी पर अब भी अनेक समस्यायें बनी हुई हैं। इन्हीं को लेकर दुनिया नब्बे के दशक में पहुँच गई। इन आशाओं के साथ कि यह दशक मानव भलाई की दिशा में हो रहे प्रयासों को और तेज़ करेगा। □□

परमाण्विक औषधियों से रोगों का उपचार

प्रेमप्रकाश व्यास

जब भी परमाणु ऊर्जा की बात आती है तो लोगों के सामने भयानक विस्फोट, धमाके, गिरते हुए घर, चीखते हुए लोग और विभिषिका का तांडव दिखाई देने लगता है, किन्तु परमाणु ऊर्जा का एक पहलू और भी है, वह इसका शांतिपूर्ण उपयोग, परमाणु ऊर्जा से बनी बिजली तो अब बीते दशकों की बातें हो गई हैं, इसका नवीनतम उपयोग विभिन्न रोगों के उपचार में किया जा रहा है।

वैसे तो पिछले कुछ दशकों से परमाणु समस्थानिकों का उपयोग रोगों के उपचार में किया ही जा रहा है अब इनका प्रयोग रोगों का पता लगाने, परमाणु समस्थानिकों को औषधि का रूप देने तथा अंगों के क्रिया कलापों का पता लगाने में अनुज्ञापक (ट्रेसर) के रूप में भी किया जा रहा है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान अब चीरफाड़ से शीघ्र मुक्त होने जा रहा है क्योंकि परमाण्विक औषधियों से मस्तिष्क, हृदय, वृक्क, व यकृत जैसे अतिसंवेदनशील अंगों की चिकित्सा भी बिना उन्हें छेड़े सम्भव है। रोगों के निदान को ही लें, जहाँ नवीनतम परमाण्विक औषधीय उपकरणों के प्रयोग से कई घातक रोगों का पता प्राथमिक स्तर पर ही चल जाता है। हाल ही में विकसित "कम्प्यूटर इमेज डिवाइस" मस्तिष्क के अर्बुद तथा हृदय की भीतरी जाँच में अत्यन्त उपयोगी साबित हुई है। श्वसन सम्बन्धी गड़बड़ी का पता लगाने में रोगी को ज़ीनोन—133 नामक परमाण्विक समस्थानिक सुंघाया जाता है तथा कम्प्यूटर इमेज डिवाइस से फेफड़ों की आन्तरिक रचना देखी जा सकती है। इसी प्रकार फेफडों के भीतर श्वसन कुपिकाओं की रचना का अध्ययन करने के लिए टेक्टेनियम—99 एम को काम में लिया जाता है। परमाण्विक औषधियाँ थायरोईड ग्रन्थि, यकृत, अग्नाशय तथा हृदय के विकारों का पता लगाने में सहायक हैं। आन्त्र में होने वाली उपापचयी क्रियाओं का पता भी इनसे लग जाता है।

प्रधानाध्यापक, राष्ट्रीय माध्यमिक विद्यालय, जताई, बाड़मेर—344001

इसी प्रकार की अन्य विधि "रेडियो इम्यूनोएसेज" कहलाती है, जिसकी सहायता से हार्मोन, एंजाइम, वसा व प्रोटीन की मात्रा का मापन सम्भव है। इनका सर्वाधिक उपयोग थाइरॉक्सिन, डिजिटोक्सिन व वृद्धि हॉर्मोन की मात्रा का पता लगाने में किया जाता है। यही नहीं इससे रक्तदाताओं का रक्त भी पूर्व में ही जांच लिया जाता है जिससे विषैले वायरस की उपस्थिति का पता लग जाता है। नवजात शिशुओं के रोगों का निदान चिकित्सा विज्ञान को चुनौती थी, क्योंकि उनके अल्पविकसित, कोमल अंगों के साथ शल्य क्रिया करना काफी दुष्कर कार्य था और अधिकांश मामलों में शिशुओं की मृत्यु तक हो जाती थी अथवा कोई विकृति उत्पन्न हो जाती थी, जो पूरे जीवन भर उनके साथ रहती थी। लेकिन रेडियो इम्यून एस्तेज की सहायता से अब यह समस्या काफी कम हो गई है। इस प्रकार के परीक्षण में रोगी की कुछ बूंदे रक्त को लेकर परमाण्विक औषधियों द्वारा रोगों का पता लगाना सम्भव है।

इस क्षेत्र में सर्वाधिक विकसित तकनीक "सांइटोग्राफी" कही जा सकती है जिसमें शरीर के भीतरी अंगों के द्वि आयामी चित्र प्राप्त किये जा सकते हैं। इसी क्रम है त्रिआयामी चित्र प्राप्त करने की तकनीक जिसे "टैमोग्राफी" कहा जाता है, अत्यन्त सफल सिद्ध हुई है जिसमें मस्तिष्क के चित्र प्राप्त किए जाकर कैंसर का पता मिनटों लगा लिया जाता है। आयोडीन का उपयोग कर थायरोइड ग्रन्थि के चित्र प्राप्य किए जाते हैं। क्रोमियम—51 के प्रयोग से तिल्ली तथा सीलिनियम—75 का उपयोग अग्नाशय की भीतरी रचना को त्रिआयामी स्वरूप प्रदान करने में किया जाता है। कोबाल्ट—57 का प्रयोग रक्तल्पता का पता लगाने में किया जा रहा है।

वैसे तो रेडिया समस्थानिकों अथवा परमाण्विक औषधियों का प्रयोग खतरनाक रहता है क्योंकि उसमें विकिरण की समस्या रहती है परन्तु "साइक्लोट्रोन" से ऐसे परमाण्विक समस्थानिक प्राप्त किए गये हैं जो अल्पजीवी हैं, जिससे विकिरण की समस्या समाप्त सी हो गई है। सर्वाधिक उपयोगी समस्थानिक कार्बन—11, नाइट्रोजन–13, ऑक्सीजन–15, व आयोडिन–123 है। इनका प्रयोग शल्यक्रिया में काम आने वाले उपकरणों को जीवाणुरोधी बनाने में भी किया जा रहा है। रूई, पट्टी, सुई व दवाईयों को इससे जीवाणुरोधी बनाया जाता है ताकि शल्यक्रिया के बाद घावों में मवाद न भरने पाए। परमाण्विक औषधियों का प्रयोग दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है और वह दिन दूर नहीं जब शल्यचिकित्सा व चिकित्सा विज्ञान की अन्य शाखाएँ, परमाण्विक रोगनिदान व चिकित्सा की पर्याय बन जाएगी। □□

इतिहास के झरोखे से

परमाणु विखण्डन : ऐतिहासिक दृष्टि

प्रो० रमेशचन्द्र कपूर

नाभिकीय विखण्डन की सर्वप्रथम पहचान 1939 में हुई। इस क्रान्तिकारी अनुसंधान को सम्पन्न हुए पचास वर्ष से भी अधिक हो गये, जिसके फलस्वरूप परमाणु बम की उत्पत्ति हुई थी। उसके विनाशकारी उपयोग जापान के हिरोशिमा तथा नागासाकी नगरों पर 1945 में किये गये थे। फलस्वरूप जो भयंकर परिणाम हुए उनके प्रभाव वहाँ के निवासी आज भी झेल रहे हैं। जर्मन रसायनज्ञ **ओतो हान** को परमाणु विखण्डन की खोज का श्रेय मिला, परन्तु मान्यता यह है कि विश्वभर में फैले हुए अनेक वैज्ञानिकों के अकथ

प्लाट ए 4, 8 रेजिडेंसी रोड, जोधपुर—342001 (राजस्थान)

प्रयास द्वारा ही यह खोज सम्भव हो सकी थी। इस समय इसका विहगावलोकन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि नाभिकीय विखण्डन की खोज समय से आठ या दस वर्ष पहले हो जानी चाहिये थी। आश्चर्य इस तथ्य पर होता है कि कुछ वैज्ञानिक तो इस तथ्य के अति निकट आकर भी उसकी खोज से वंचित रह गये। एक ने तो कुछ समय पहले विखण्डन के सिद्धांत का प्रतिचालन भी किया परन्तु उस समय के वैज्ञानिक समुदाय ने उसकी अनसुनी कर दी थी।

उन्नीस सौ बीस तथा तीस के दशकों में भौतिकी की अनेक रोमांचकारी खोजें हुईं और विश्व भर में अनेक वैज्ञानिक नाभिकीय संरचना तथा क्वांटम बल विज्ञान में तेजी से प्रगति कर रहे थे। सारी क्रियाओं तथा कार्यशैलियों की विवेचना करने पर हम विभिन्न वैज्ञानिकों के योगदानों का मूल्यांकन कर सकते हैं। यह समझना भी आवश्यक है कि उस ऐतिहासिक काल में, आधुनिक काल की अपेक्षा, प्रयुक्त वैज्ञानिक सभी यंत्र अत्यंत स्थूल तथा अपरिष्कृत थे। इस समय लगभग सभी तत्वों के समस्थानिक विशुद्ध अवस्था में मिल सकते हैं, और मिश्रित समस्थानिकों को अलग करने के संयंत्र उपलब्ध हैं। किसी भी प्रयोग को आरम्भ करने से पहले उसका कंप्यूटर द्वारा अनुकरण संभव है। आज कम्प्यूटर किसी भी प्रतिवाद की सैद्धांतिक जाँच कर सकता है। उस काल में यह सब उपलब्ध न था। यदि हम उस काल के वैज्ञानिकों की कठिनाइयों का अनुमान लगाएँ तो यह बात आसानी से समझ में आ सकती है कि लगभग पाँच वर्षों तक नाभिकीय विखण्डन के प्रयोगशाला में सफल परीक्षण के बावजूद उसकी परख क्यों न हो सकी थी।

यहाँ यह भी समझना आवश्यक है कि रूसी रसायनज्ञ मेन्डेलीव की 'आवर्त सारिणी' का रासायनिक तत्वों पर अनुसंधान करने की शैली पर गहरा प्रभाव था। मेन्डेलीव से पूर्व भी कुछ वैज्ञानिकों ने तत्वों की तालिकाएँ प्रस्तावित की थीं, परन्तु उनकी बनाई सारिणी की विशेषता यह थी कि अपने प्रतिपादित नियमों के बल पर मेन्डेलीव ने अनेक नये तत्वों के खोजे जाने की भविष्यवाणी की थी जो आगे चलकर खरी उतरीं। पन्द्रह वर्षों के अंतराल में ऐसे तीन तत्त्वों की खोज हो गई। ये थे गैलियम (मेन्डेलीव द्वारा प्रस्तावित एका-एल्युमिनियम), स्कैन्डियम (एका-बोरान) तथा जर्मेनियम (एका-सिलिकन)। अपने भविष्यद् तत्वों के नाम प्रस्तावित करते समय मेन्डेलीव ने संस्कृत के एक—, द्वि—, त्रि— पूलिग्नों का उपयोग किया था। इन तीनों तत्वों के भौतिक तथा रासायनिक गुण भी लगभग वही थे जो मेन्डेलीव ने अपनी भविष्यवाणी में कहे थे। पिछली शती के अंत में वैज्ञानिक इन तथ्यों से प्रभावित हो कर मेन्डेलीव की आवर्त सारिणी का आधार लिया करते थे। कुछ ऐसा आभास होने लगा था कि पृथ्वी के लगभग सभी तत्त्व खोजे जा चुके हैं और उनकी बनावट का भी ज्ञान हो चुका है। अब केवल उनके गुणों की सूक्ष्म गणना करनी शेष रह गई है।

परन्तु इंग्लैंड के थामसन द्वारा इलेक्ट्रॉन तथा 1895 में जर्मनी के रोंजेन के द्वारा एक्स किरणों की खोजों से परिस्थिति बदल गई। कुछ ही समय पश्चात् फ्रांसीसी वैज्ञानिक बैकेरल ने रेडियो सक्रियता का ज्ञान प्राप्त किया। शीघ्र ही रदरफोर्ड ने अल्फ़ा कणों पर अनुसंधान करते समय तत्वों के रूपान्तरण का सिद्धांत स्थापित किया। उसके कुछ समय बाद हेनरी मोजले ने एक्स विकिरणों की स्पेक्ट्रमी रेखाओं की विवेचना द्वारा परमाणु संख्या का सिद्धान्त स्थापित किया और उसके महत्त्व को दर्शाया। तदनुसार मेन्डेलीव की आवर्त सारिणी के परमाणु भार के स्थान पर परमाणु संख्या के आधार पर गठित किया गया। इसके फलस्वरूप कुछ तत्वों के स्थान परिवर्तित हो गये। दुर्लभ मृदा तत्वों की संख्या तथा स्थान की समस्या इसी सिद्धांत पर हल की गई थी।

डेनमार्क के सुविख्यात वैज्ञानिक निएल्स बोर ने 1921 में परमाणुओं के कक्षीय प्रतिरूप के सिद्धांत को प्रतिपादित किया था। इसके अनुसार लेंथेनम के अतिरिक्त दुर्लभ-मृदा तत्वों की संख्या 14 नियत की गई। साथ में 72 परमाणु संख्या वाले तत्त्व के बारे में यह जाना गया कि वह दुर्लभ-मृदा के साथ न रह कर

चौथे समूह में अलग स्थान ग्रहण करेगा। बाद में चौथे समूह के अन्य तत्त्वों के खनिजों के अन्दर ही इस तत्त्व की खोज हुई और इसका नाम हेफनियम रखा गया। लगभग इसी काल में जर्मनी के वाल्तर तथा इदा नोदक ने 43 तथा 75 परमाणु संख्या वाले तत्त्वों की खोज का दावा किया और इनके मेसूरियम (43) तथा रीनियम (75) नाम प्रस्तावित किये। मेन्डेलीव ने इन तत्त्वों की खोज की भविष्यवाणी की थी तथा इनको एक—मेंगनीज तथा द्वि—मेंगनीज नाम दिये थे। नोदक द्वारा रीनियम की खोज खरी उतरी परन्तु मेसूरियम की पुष्टि न हो सकी। कुछ दिनों बाद इटली के एमीलियो सेग्रे ने 43 तत्त्व का रेडियोसक्रिय रूप में निर्माण किया, और इसे टेक्नीशियम नाम से पुकारा गया। यह कार्य मोलिब्डिनम पर ड्यूटीरियम नाभिकों की बमबारी से सम्पन्न हुआ था।

1919 में केम्ब्रिज विश्वविद्यायय की प्रसिद्ध केवेंडिश प्रयोगशाला के अध्यक्ष पद पर न्यूजीलैण्ड में जन्मे लब्धप्रतिष्ठ वैज्ञानिक रदरफोर्ड की नियुक्ति हुई। उन्होंने ही सर्वप्रथम परमाणुओं के रूपान्तरों सम्बन्धी सफल प्रयोग किये थे। 1920 में एक व्याख्यान में उन्होंने यह सम्भावना प्रगट की थी कि प्रोटॉन के भार के समान एक दूसरा और कण होना चाहिये जो आवेशरहित हो। रेडियोसक्रिय परमाणुओं के गुणों को समझाने के लिए इस कण की उपस्थिति आवश्यक थी। दस वर्ष तक रदरफोर्ड ने इस कण को खोजने का प्रयास किया परन्तु सफलता न मिली।

दूसरी ओर 1932 में फ्रेड्रिक जोलिएट तथा उनकी पत्नी इरीन क्यूरी ने पेरिस में बोरिलियम पर अल्फा कणों की बमबारी के प्रयोग किये, जिनमें कुछ विकिरण उत्पन्न हुए। उनके अनुसार ये गामा विकिरण थे यद्यपि यह भौतिकी के सिद्धांतों के प्रतिकूल ज्ञात होता था। 1920 में रदरफोर्ड द्वारा दिये गए भाषण की ओर जोलिएट—क्यूरी ने कोई ध्यान न दिया था। यदि ऐसा किया होता तो उन्हें न्यूट्रॉन की खोज का श्रेय मिल जाता। कुछ समय पश्चात् उन्होंने खेदपूर्वक अपनी भूल स्वीकार की। उनकी धारणा थी कि अपने मौलिक विचारों को कोई भी वैज्ञानिक सामान्य भाषण में सर्वप्रथम प्रगट नहीं करता है। रदरफोर्ड के उस भाषण के प्रकाशित संस्करण को जोलिएट या क्यूरी ने पढ़ने का कोई प्रयास नहीं किया। सैद्धांतिक अनुसंधानों अथवा विचारों की उस समय उतनी साख न थी, जितनी प्रायोगिक कार्यों की थी।

परन्तु रदरफोर्ड के शिष्य चेडविक ने जोलिएट-क्यूरी के प्रयोगों के महत्व को तुरन्त पहचान लिया। उन्होंने उन प्रयोगों को दोहराया और कहा कि बेरिलियम पर अल्फा कणों की बमबारी से गामा विकिरण उत्पन्न नहीं होते, वरन् न्यूट्रॉनों की उत्पत्ति होती है। न्यूट्रॉन की खोज का श्रेय चेडविक को प्राप्त हुआ और जोलिएट-क्यूरी अपनी अनभिज्ञता के कारण इस खोज से वंचित रह गये।

एक खोज से हाथ धो बैठने के बाद जोलिएट-क्यूरी ने 1934 में कृत्रिम रेडियोसक्रियता की चमत्कारिक खोज की जो सर्वप्रथम एल्यूमिनियम पर अल्फ़ा कणों की बमबारी से सम्भव हुई थी। इस प्रक्रिया द्वारा धन आवेश वाले इलेक्ट्रॉन (पोजिट्रॉन) की भी पहचान की गई। इसमें आश्चर्य की बात यह हुई कि एल्यूमिनियम पर अल्फ़ा कणों की बमबारी बन्द करने के पश्चात् भी पोजिट्रॉनों का उद्गम होता रहा जो प्राकृतिक रेडियोसक्रियता के नियमों के अनुरूप था। उन दिनों रेडियोसक्रियता द्वारा उत्पन्न विकिरण या कणों का अध्ययन 'गाइगर-मुलर गणित्रों' द्वारा ही हुआ करता था। अपने प्रयोगों के कारण फ्रेड्रिक जोलिएट बड़ी उलझन में पड़ गये। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि या तो उनके गणित्र निरंकुश हो गये हैं अथवा उनके द्वारा मूलभूत खोज हुई है। भली प्रकार जाँच से यह पुष्ट हुआ कि गणित्र बिलकुल सही काम कर रहे थे। जोलिएट-क्यूरी ने शीघ्र ही कृत्रिम रेडियोसक्रियता की खोज की घोषणा की और फलस्वरूप 'नोबेल पुरस्कार' अर्जित किया। उन्हीं दिनों अमेरिकी भौतिकविज्ञानी लारेंस केलिफोर्निया विश्वविद्यालय में साइक्लोट्रॉन द्वारा उत्पन्न उच्च

गतिज कणों की सहायता से नाभिक रूपान्तरण पर अनुसंधान कर रहे थे। उनके गणित्र भी प्रायः ऐसा ही असामान्य व्यवहार करते थे। होता यह था कि गतिज कणों के नाभिकों पर बमबारी बन्द करने के पश्चात् भी नाभिकों से विकिरण उत्पन्न होते रहते थे। लारेंस ने साइक्लोट्रॉन बन्द करने के बाद भी गणित्र के क्रियाशील रहने की विशेषता को न समझा वरन् साइक्लोट्रॉन बन्द करने के साथ ही गणित्रों को भी बन्द करना आरम्भ कर दिया।

उस समय तक समान रासायनिक गुणों के कारण दुर्लभ-मृदा के तत्वों को आवर्त सारिणी में एक स्थान पर रखा जाने लगा था। लैंथेनम के साथ तीसरे समूह में रखने के कारण उन्हें लैंथेनाइड तत्वों की संज्ञा दी गई। परन्तु उन्हीं के अनुरूप आवर्त सारिणी की अगली श्रृंखला में एक्टिनाइड समूह के तत्वों का उस समय तक ज्ञान नहीं उभरा था। इसी कारण थोरियम को चौथे समूह तथा यूरेनियम को छठे समूह में रखा जाता था। एक्टीनियम तथा प्रोटोएक्टीनियम को क्रमशः तीसरे तथा पाँचवें समूह में स्थान दिया गया था, यद्यपि अत्यन्त अस्थिर अवस्था के तत्व होने के कारण उनके रासायनिक गुण उस समय तक भली प्रकार ज्ञात न थे। ऐसा अनुमान था कि यूरेनियम से उच्च परमाणु संख्या वाले पार-यूरेनियम तत्वों के-रासायनिक गुण छठे समूह तत्वों के समान होंगे। परमाणु विखण्डन क्रिया को पहचानने में इस विचार-धारा के कारण भी विलम्ब हुआ।

फर्मी ने न्यूट्रॉन की खोज होते ही परमाणविक अभिक्रियाओं में उसकी विशेष उपयोगिता को पहचान लिया कि आवेशरहित होने के कारण न्यूट्रॉन हल्के तथा भारी दोनों ही वर्गों के नाभिकों के अत्यन्त निकट आकर उनसे अभिक्रिया करने में सक्षम होंगे। शीघ्र ही लगभग सभी तत्वों के साथ उन्होंने न्यूट्रॉन प्रक्रिया के अध्ययन आरम्भ किये। जिससे तत्वों के कृत्रिम रेडियोसक्रिय समस्थानिक बने और उनके गुण-धर्मों का अध्ययन हो सका। अधिकतर उन्होंने यह पाया कि निर्मित रेडियोसक्रिय समस्थानिक से इलेक्ट्रॉन का क्षय होता था और तत्व की परमाणु संख्या एक संख्या से बढ़ जाती थी। उदाहरण के लिए सोडियम पर न्यूट्रॉन बमबारी से रेडियो-सोडियम बनता है। और इलेक्टॉन निकल जाने पर वह मैग्नी-सियम में रूपांतरित हो जाता है। प्रायः एक अर्ध-जीवन अवधि वाला एक ही विकिरण उदित होकर क्रिया समाप्त हो जाती है। इसके विपरीत यूरेनियम प्रयोगों के समय फर्मी ने चार प्रकार के विकिरणों की पहचान की। प्रत्यक की अलग-अलग अर्ध-जीवन अवधि भी थी। फर्मी के अनुमान से इन क्रियाओं के द्वारा पार-यूरेनियम तत्व बन रहे थे। उन्होंने 93 परमाणु संख्या वाले को-आसेनियम तथा 94 को-हेस्पेरियम कहा। अपने प्रयोगों में फर्मी ने यह भी पाया कि मंद न्यूट्रॉनों द्वारा अधिक रेडियोसक्रियता उत्पन्न होती थी। यह उस समय बलगतिकी के सिद्धान्तों के विपरीत लगता था। इन प्रयोगों को फर्मी ने इतालियन वैज्ञानिक पत्रिका में छपा कर उसकी पुनर्मुद्रित प्रतियाँ विश्व के चालीस विख्यात वैज्ञानिकों को प्रेषित की। रदरफोर्ड ने धन्यवाद सहित अपनी प्रतिक्रिया भेजी और फर्मी को प्रायोगिक कार्य करने पर बधाई दी। ऐसा लगता है कि उस समय प्रायोगिक वैज्ञानिकों को सिद्धान्ती की अपेक्षा उच्च स्तर का माना जाता था। अब मालूम होता है कि स्थिति पलट गई है।

अन्य वैज्ञानिकों ने भी फर्मी के अनुसंधानों पर अपनी टिप्पणियाँ भेजी थीं। शिकागो स्थित फान ग्रासे ने अपने रासायनिक विश्लेषणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि न्यूट्रॉन बमबारी से यूरेनियम को घट कर प्रोटोएक्टिनियम 91 में परिणित होना चाहिये। आधार यह था कि यदि 93 तत्व बना होता तो उसके रासायनिक गुण सातवें समूह के तत्वों (मैंगनीज, रीनियम) के अनुरूप होते। यह यथार्थ में न पाये गये। ग्रासे के प्रयोगों के अनुसार परिणामी तत्व के गुण प्रोटोएक्टीनियम जैसे ज्ञात होते थे। अचरज की बात यह है कि 1934 में स्वयं ग्रासे ने एक अन्य लेख में यह विचार रखा था कि लैन्थेनाइड

तत्वों के अनुरूप ही 93 तथा 94 संख्या वाले तत्व एक अन्य समूह के सदस्य हो सकते हैं।

1934 में सुश्री इदा नोदक ने एक लेख प्रकाशित किया जिसमें सुझाव था कि यदि यूरेनियम जैसे भारी नाभिक पर न्यूट्रॉनों की बमबारी हो तो नाभिक की टुकड़ों में विभाजित होने की सम्भावना है। टूटे हुए खण्ड मूल तत्व के पड़ोसी न होकर आवर्त सारिणी की मध्यमान स्थिति के तत्वों के समस्थानिक होंगे। यह उद्गार भौतिकी नियमों के प्रतिकूल ज्ञात होते थे और इसी कारण कुछ समय तक नोदक इस लेख को प्रकाशित करने में हिचकिचाईं। अंतत: अपने पति की सहमति से एक यात्रा के बीच में वारसा नगरी से उस लेख को डाक द्वारा छपने के लिये भेज दिया। उस समय वह एक कान्फ्रेंस में सम्मिलित होने के लिये रूस की राजधानी मास्को जा रही थीं। वह लेख जर्मन पत्रिका 'अंगवनदीते खेमि में 1934 के एक अंक में छपा था परन्तु उसमें दिये क्रान्तिकारी विचार को वैज्ञानिक समुदाय ने अटकलबाजी ही समझा होगा। अब यह आश्चर्यजनक प्रतीत होता है कि उस समय किसी ने भी जाँच के लिये प्रयोग नहीं किये। मुख्य कारण यह हो सकता है कि उस समय तक नाभिकों की सामूहिक गतिजि पर किसी ने ध्यान नहीं दिया था। तब तक नाभिक की बनावट के बारे में नियेल बोर ने तरल बिन्दु प्रारूप सिद्धान्त को प्रतिपादित नहीं किया था। सुश्री नोदक को, विशेषकर ओतो हान द्वारा, अपने सिद्धांत के अनादर का बहुत क्षोभ रहा।

फर्मी ने विशेष कारणों से कुछ समय के लिये यूरेनियम प्रयोगों से अपना ध्यान हटाकर न्यूट्रॉन के मूलभूत गुणों की जाँच पर केन्द्रित किया। इन अनुसंधानों के फलस्वरूप फर्मी को 'नोबेल पुरस्कार' मिला। उन्हीं दिनों इटली में फासिस्ट ताकतें अपनी जकड़ मजबूत कर रही थीं। फर्मी की पत्नी की माता के यहूदी होने के कारण उन्हें संकट की आशंका हुई। इसलिये 1938 में उन्होंने अमेरिका में बसने का निश्चय कर लिया। फलस्वरूप यूरेनियम प्रयोग फ्रांसीसी तथा जर्मन हाथों में ही रह गये।

उस समय जर्मनी की राजधानी बर्लिन में सुश्री माइतनर तथा ओतो हान यूरेनियम पर न्यूट्रॉन की बमबारी के सूक्ष्म प्रयोग कर रहे थे। उनके अनुसार बमबारी के फलस्वरूप अनेक पार-यूरेनियम तत्व निर्मित हो रहे थे जिनकी परमाणु संख्या 93 से 96 तक थी। परन्तु अचम्भा इस तथ्य पर था कि प्रयोगों के कारण बीटा विकिरणों की अनेक क्रमबद्ध शृंखलाएं प्रगट हो रही थी। यूरेनियम जैसे भारी तत्वों के प्राकृतिक रेडियोसक्रिय प्रक्रम में बीटा विकिरणो के अधिकतम दो ही क्रम एक साथ मिलते थे, जिनके पश्चात् एक अल्फा कण का क्षय होता था। उधर पेरिस में जोलिएट-क्यूरी दम्पत्ति ने थोरियम पर न्यूट्रॉन बमबारी से कार्य का श्रीगणेश किया और फिर उन्हें यूरेनियम पर दोहराया। प्रयोगों में उन्हें एक नवीन रेडियोसक्रियता मिली। उन्होने एक्टीनियम के समस्थानिक को इसका स्रोत समझा, क्योंकि उत्पाद के रासायनिक गुण लेंथेनम से मिलते थे। आज हम यह समझ सकते हैं कि जोलिएट-क्यूरी के प्रयोगों से यूरेनियम का विखण्डन हुआ था, जिसका एक उत्पाद लैंथेनम 141 था। यही लैंथेनम का समस्थानिक नई रेडियो-सक्रियता का स्रोत रहा होगा। अपने संस्मरणों में क्यूरी ने यह लिखा था कि उन दिनों उन्हें कभी-कभी ऐसा लगता था कि यूरेनियम प्रयोगों में आवर्त सारिणी के अधिकांश तत्व जमा हो गये थे। परन्तु उन्होने उस समय तो यही निष्कर्ष निकाला था कि 93 संख्या वाला तत्व प्रयोगों में बना था।

क्यूरी के प्रयोगों पर आधारित शोधपत्रों को पढ़कर ओतो हान को उलझन तथा झुँझलाहट हुई। क्यूरी के पति फ्रेड्रिक जोलिएट से एक बार उन्होंने यहाँ तक कहा कि आपकी पत्नी का कार्य सर्वथा गलत है परन्तु महिला होने के कारण वह उनकी खिल्ली नहीं उड़ाना चाहता। हान ने क्यूरी द्वारा ढूंढ़े हुए रेडियोसक्रिय तत्व के नाम हँसी में क्यूरीओसम (Curiosum) रख दिया।

1930 के दशक में जर्मनी के अन्दर हिटलर का उत्थान हो रहा था। सुश्री माइतनर आस्ट्रिया के एक रोमन कैथोलिक परिवार में पैदा हुई थीं, परन्तु उनकी

माँ यहूदी नस्ल की थीं। आस्ट्रिया को 1938 में दबोचने के बाद जर्मनी में बनाये यहूदी विरोधी कानून आस्ट्रिया के नागरिकों पर भी लागू हो गये और माइतनर के लिये जर्मनी छोड़ कर जाना नितांत आवश्यक हो गया। उसी वर्ष हेफनियम की खोज करने वाले **डर्क कास्टर**, माइतनर को जर्मनी से निकालने में सफल हो गये। विश्वविख्यात वैज्ञानिक **पाउली** ने कास्टर की इस सफलता पर यह बधाई का तार भेजा—"माइतनर को भगा कर तुमने उतनी ही ख्याति पाई है जितनी की हैफनियम की खोज से तुम्हें मिली थी"। माइतनर हालैंड होते हुए स्वीडन पहुँचीं और स्टाकहोम में स्थिति **जिगबाम** के शोध संस्थान में उन्हें स्थान मिल गया।

हान तथा माइतनर की प्रयोगशाला में कुछ नात्सी विचारधारा वाले युवा वैज्ञानिक भी थे। वे हिटलर द्वारा प्रचलित भूरी कमीज की पोशाक में ही काम पर आते थे। इन्हें SS या तूफ़ानी फौजी के नाम से पुकारा जाता था। फॉन ड्रास्टे नामक एक ऐसे ही वैज्ञानिक से माइतनर ने यूरेनियम प्रयोगों द्वारा उत्पन्न अल्फ़ा कणों की जाँच करने को कहा। आसिलस्कोप पर अल्फा कणों के पुंज फान ड्रास्टे को क्षणिक काल के लिए दिखाई देकर गायब हो जाते थे। ड्रास्टे यदि यंत्र की संवेदनशीलता घटा देता तो कदाचित उसे यूरेनियम विखण्डन के स्पंद दृष्टिगोचर हो जाते। अंततः वह जाँच करने में असफल रहा, परन्तु बाद में उसने शिकायत की कि माइतनर ने उसे 'बेकार' आदमी की संज्ञा दी थी।

माइतनर के पलायन के बाद हान ने अपने शिष्य **स्ट्रासमान्** के साथ कार्य जारी रखा। कुशल रासायनिक विश्लेषणों से उसे यह स्पष्ट हो गया कि अपने प्रयोगों के जिस उत्पाद को वह रेडियम समझता था वह वास्तव में बेरियम का रेरियोसक्रिय समस्थानिक था। अपने कार्य पर पूर्ण विश्वास होने से वह समझ गया कि इन प्रयोगों में यूरेनियम का क्षय रूपान्तरण न होकर उसके नाभिक का विखण्डन हो रहा था जिसमें उसके नाभिक टूट कर छोटे नाभिकों में बदल रहे थे। इन प्रयोगों पर आधारित उसका ऐतिहासिक शोधपत्र जर्मनी की पत्रिका 'नातूरविजेनशाफ्तन' के 1939 के अंक में प्रकाशित हुआ। उन्होंने लिखा था—'अपने प्रयोगों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यूरेनियम पर न्यूट्रॉनों की प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न जिन उत्पादों को हम रेडियम तथा एक्टीनियम समझते थे वे वास्तव में बेरियम, लेंथेनम वा सीजियम थे। ये परिणाम अभी तक किये गये सारे भौतिकी प्रयोगों के प्रतिकूल प्रतीत होते हैं। इसी कारण नाभिकी रसायनज्ञ होने के नाते हमें इतनी बड़ी छलांग को लेना कठिन मालूम होता है।' हान को अपने परिणामों पर पूरा भरोसा था परन्तु रासायनज्ञ होने के कारण वह भौतिकी की इतनी बड़ी खोज की घोषणा करने में हिचकता था। उसी समय हान ने माइतनर को अपने परिणामों के बारे में भी लिखा। उत्तर तुरन्त आया कि यूरेनियम का विखण्डन असम्भव नहीं है। 1939 में अंग्रेजी पत्रिका 'नेचर' के एक अंक में माइतनर ने अपने भतीजे **ओतो फ्रिश** के साथ एक लेख प्रकाशित किया, जिसमें लिखा था कि उनका निष्कर्ष है कि अपने प्रयोगों द्वारा हान यूरेनियम नाभिक के विखण्डन करने में सफल हुए हैं। उस लेख में **'nuclear fission'** (न्यूक्लियर फिशन) मुहावरे का सर्वप्रथम उपयोग किया गया था। यह मुहावरा जीव विज्ञान कोष-से लिया गया था। बाद में फ्रिश ने और हान ने प्रयोगों को दोहराया और यूरेनियम नाभिक के खण्डित टुकड़ों से उत्पन्न स्पंदों को ओस्सिलॉस्कोप पर स्वयं देखा।

नाभिक विखण्डन की खोज में कई वर्ष के विलम्ब होने के अनेक कारण थे। आवर्त सारिणी के मान्य प्रारूप से वैज्ञानिकों ने अपने परिणामों से ग़लत निष्कर्ष निकाले। कृत्रिम रेडियोसक्रियता की खोज के आरम्भिक काल में यह देखा गया था कि रेडियो सक्रिय तत्व बीयक्षय के कारण अपने पड़ोसी तत्व में बदलता जाता था। इसी लिए बहुत काल तक किसी को नाभिक विखण्डन का विचार न आया। 1932 में नोदक द्वारा प्रकाशित सैद्धांतिक लेख पर यदि

ध्यान दिया गया होता तो कदाचित जोलिएट-क्यूरी अपने प्रयोगों में परमाणु विखण्डन की पहचान कर लेते। उनकी असफलता का एक कारण यह भी था कि विखण्डन क्रिया द्वारा उत्पन्न जटिल समिश्रण के रासायनिक विश्लेषण में वे असमर्थ रहे। विषम राजनैतिक परिस्थितियों में सुश्री माइतनर को हान की प्रयोगशाला छोड़ कर ऐसे समय में जाना पड़ा जब कि उनका समूह परमाणु विखण्डन की खोज के निकट पहुँच चुका था। वे इसका श्रेय पाने से वंचित रह गईं। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि माइतनर ने हान की खोज की महत्ता को सर्व प्रथम पहचाना।

इस तथ्य पर ध्यान देने से रोंगटे खड़े हो जाते हैं कि यदि हान और उनके सहयोगियों ने परमाणु विखण्डन की खोज 1939 के स्थान पर 1934 में की होती जो जर्मनी के वैज्ञानिकों को द्वितीय युद्ध आरम्भ होने से पहले ही परमाणु अस्त्रों के विकास के लिये समुचित समय मिल गया होता। उस स्थिति में विश्व इतिहास किसी और दिशा में मोड़ लेता।□□

गंगा की तलहटी में अमरूद का बाग लगाएँ

दर्शनानन्द

गंगा हम सब के लिए एक पवित्र नाम है। गंगा जल विभिन्न धार्मिक एवं शुभ अवसरों पर प्रयोग किया जाता है। समय-समय पर तीर्थ यात्री गंगा नदी के पवित्र जल में डुबकी लगाते हैं। कुम्भ मेले में विभिन्न पर्वों पर लाखों की संख्या में यात्री प्रयाग (इलाहाबाद) और हरिद्वार तथा वाराणसी जैसे अन्य तीर्थ स्थानों में जाकर गंगा स्नान करते हैं। स्नान करने के अलावा गंगा जल पीते भी हैं और इससे फसलों की सिंचाई भी करते हैं।

समुद्र तल से 4000 मीटर की ऊँचाई से हिमालय की गुफा से निकल कर गंगा नदी उत्तर के ऋषिकेश से 2,525 किलोमीटर की यात्रा शुरू करती हुई बंगाल की खाड़ी में गिर जाती है। इस बीच यह पावन गंगा हरिद्वार, फतेहगढ़, कानपुर, इलाहाबाद, मिर्जापुर, वाराणसी, छपरा, पटना, बहरामपुर, हाबड़ा व कलकत्ता जैसे प्रमुख व अन्य—कुल 100 नगरों व कस्बों से गुजरती है।

ऐसी पवित्र और अति उपयोगी नदी में अस्थियों व मृत शरीरों के प्रवाह करने तथा कपड़े धुलने, पशुओं के नहाने व कूड़ा करकट फेंकने से गंगा जल दिन प्रतिदिन प्रदूषित होता जा रहा है। इनके अलावा गंगा नदी के किनारे के स्थान इन 100 नगरों व क़स्बों के निवासियों और पशुओं के मल-मूत्र त्यागने से भी गंदगी फैलती है। ये सब बहकर गंगा जी में ही आ जाते हैं और जल को पुनः प्रदूषित करते हैं।

इन्ही कारणों से गंगा जल अब इतनी प्रदूषित हो गई है कि जल पीने लायक नहीं रह गया। ये प्रदूषित गंगा जल विशेष कर इलाहाबाद, कानपुर, फतेहगढ़, मिर्जापुर, हरिद्वार और वाराणसी में पाये गए हैं। वाराणसी में तो गंगाजल का वैज्ञानिकों द्वारा परीक्षण करने पर यह मालूम हुआ कि उसमें बहुत सी विषैली धातुएँ हैं जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं।

ऐसी स्थिति में प्रदूषण बचाने के अन्य उपायों के अतिरिक्त यदि गंगाजल की तलहटी का सदुपयोग कर लिया जाय तो बड़ा ही अच्छा होगा। गंगा की तलहटी में वैसे तो प्रायः लौकी, तुरई, खीरा, ककड़ी, तरबूज, खरबूज, कद्दू व करेला जैसी सब्जियाँ और फल उगा कर इसका उपयोग किया जाता है। ये फसलें जायद (गर्मी के मौसम) में ली जाती हैं, जब कि निर्धन खेतिहरों को कड़ी धूप में कठिन परिश्रम करना पड़ता है। परन्तु ये सारी फसलें कुसमय पानी के अन्दर या बाढ़ के पानी में आ जाने से नष्ट हो जाती हैं। इस

उपनिदेशक उद्यान, इलाहाबाद मण्डल (उ० प्रा०) सी-67, गुरु तेग बहादुर नगर (करेली हाउसिंग स्कीम), इलाहाबाद—211016

प्रकार सारा परिश्रम और व्यय किया गया धन नष्ट हो जाता है। उदाहरण के लिए वर्ष 1983 में इलाहाबाद में गंगा और जमुना नदी की तलहटी में लगाई गई सभी फसलें पानी बढ़ जाने से नष्ट हो गईं।

अतः इस क्षति से बचने और लाभ प्राप्त करने का एक स्थायी उपाय यह है कि गंगा नदी व अन्य बड़ी व छोटी नदियों के किनारे भी ऐसे वृक्ष लगाएँ जाएँ, जो पानी में भी टिक सकें। इस दृष्टिकोण से अमरूद एक सर्वश्रेष्ठ फल है जिसका बाग नदियों की तलहटियों में आसानी के साथ लगाया जा सकता है। अमरूद ही एक ऐसा फल है जिसका बाग बाढ़ में भी सुरक्षित रहता है।

इलाहाबाद में यह कार्य बड़े पैमाने पर किया जा सकता है, जहाँ विश्वविख्यात इलाहाबादी अमरूद उगाए जाते हैं। वास्तव में इलाहाबाद के अमरूदों की यह ख्याति इसके जन्म स्थान—ग्राम अबूबकरपुर (भभक्करपुर) से हुई जहाँ "इलाहाबाद सफेदा" किस्म के अमरूद उगाए जाते हैं। यह स्थान चायल तहसील के सुलेम सराय क्षेत्र में स्थित है।

इस क्षेत्र में "इलाहाबाद सफेदा" किस्म के अतिरिक्त 'सुर्खा' (सेबी) और 'चपटा' किस्मों के अमरूद भी उगाए जाते हैं जो बड़े स्वादिष्ट होते हैं। अब तो सेबी अमरूदो ने भी बाजार पर कब्जा कर लिया है। दिसम्बर–जनवरी और फरवरी में भी जब अमरूद इलाहाबाद के बाजारों में एकत्रित होते हैं तो उनके आकर्षक चमकदार लाल रंग लोगों का मन मोह लेते हैं और उन्हें वे सेब समझ बैठते हैं।

शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जो बाहर से आया हो और बाजार में जाने पर स्वादिष्ट व सुन्दर सेबी अमरूद खरीद कर न ले जाय। अब तो अमरूद की एक नवीन किस्म—'लाल गुदिया सेबी' अमरूद भी इसी क्षेत्र में विकसित हो गई है, जिसके फल के बाहर का भाग सेबी अमरूद की भाँति लाल होने के साथ-साथ अंदर का गूदा भी लाल होता है। साथ ही यह स्वादिष्ट भी होता है। चायल विकास खण्ड, इलाहाबाद के ये सारे अमरूद के क्षेत्र उत्तर प्रदेश शासन द्वारा फल पट्टी घोषित किए जा चुके हैं, जिससे अमरूद के ये एतिहासिक बाग सुरक्षित रहें।

गंगा के किनारे अमरूद पैदा करना एक महत्त्व-पूर्ण कार्य होगा, क्योंकि अमरूद का पौधा इतना सहिष्णु होता है, कि उसमें प्रतिकूल वातावरण सहन करने की बड़ी शक्ति होती है। कड़ी गर्मी, सर्दी, पाला ठंडी व गम हवाएँ, सूखा अथवा गीला मौसम, सूखा क्षेत्र व भारी वर्षा वाला क्षेत्र—ये सभी अरूमद के लिए उपयुक्त हैं। यहाँ तक कि महीनों बाढ़ में अमरूद के पेड़ पड़े रहने पर भी इनके नष्ट होने की संभावना नहीं रहती।

कानपुर में नवाबगंज से बिठूर तक गंगा नदी की पूरी तलहटी अमरूद के बागों से भरी है। वर्षा ऋतु में अमरूद के बाग पानी के भीतर आ जाते हैं, और वर्षा ऋतु की फसल के फल उद्यानपति नाव पर चढ़ कर तोड़ते हैं। वर्षा ऋतु के पश्चात् नदी में पानी घट जाने पर अमरूद के बाग पूर्ववत् सुरक्षित रहते हैं और फूलते-फलते रहते हैं।

इतने अधिक सद्‌गुणों को अपने भीतर उपलब्ध रखने का सुअवसर अमरूद के अतिरिक्त अन्य किसी भी फल को नहीं प्राप्त है। इतना ही नहीं बल्कि अमरूद के पौधों में इतनी सहनशीलता होती है कि पौधशाला से निकलने पर पौधे जल्दी मरते या सूखते भी नहीं हैं। यहाँ तक कि 2-3 वर्ष के पौध निकालते समय जड़ें अधिक कट जाने पर भी पुनः रोपण करने के पश्चात् पौधे पनपने लगते हैं।

यद्यपि इस बीच पौधों की पहले वाली पत्तियाँ झड़ जाती हैं, परन्तु पौधे जीवित रहते हैं, जो तने के खरोचने पर हरियाली दिखाई देने से पता चल जाता है। इस प्रकार पौधशाला से निकलने के बाद अगर रोपाई करने के पहले 15-20 दिन तक भी पौधे किसी पेड़ के छाये में पड़े रह जायें और समय-समय पर पानी मिलता रहे, तो भी वे पौधे पनपने लगते हैं।

अमरूद अच्छी से अच्छी और घटिया से घटिया सभी प्रकार की मिट्टी में चल जाता है। चिकनी, दोमट, बलुई दोमट, रेतीली व क्षारीय तथा जलमग्न

भूमि व स्थान सभी में यह चल जाता है। क्षारीय भूमि का भी अमरूद पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता, यहाँ तक कि 9.4 पी० एच० वाली मिट्टी में भी यह सफलता पूर्वक वृद्धि करता है। अतः साधारणतः जिस मिट्टी में अन्य फल नहीं होते उसमें अमरूद चल जाता है।

अमरूद स्वादिष्ट होने के साथ-साथ एक पौष्टिक फल भी है, जो विटामिन 'सी' से भरपूर रहता है। प्रति 100 ग्राम गूदे में 299 मिलीग्राम विटामिन 'सी' मौजूद रहता है। अमरूद के सेवन से पेट साफ रहता है और शरीर भी निरोग रहता है। इफरात रहने पर इसकी जेली, टॉफी, जैम वगैरह बना सकते हैं तथा इसकी डिब्बा बंदी भी कर सकते हैं।

इस प्रकार गंगा की तलहटी में पौष्टिक व स्वादिष्ट अमरूदों के बाग लगाकर स्थायी रूप से सदुपयोग किया जा सकता है। साथ ही ऐसा करने से अमरूद उत्पादन में वृद्धि होगी, भूमि का कटाव रूकेगा और निर्धनों के लिए आमदनी का एक स्थायी स्रोत भी बन जायेगा। इसी के साथ गंगा की तलहटी के ये क्षेत्र हरे भरे बना कर स्वच्छ वातावरण पैदा किया और प्रदूषण से बचाया जा सकता है।

□□

रोहतक शाखा का नया चुनाव

अध्यक्ष—डॉ० आर० डी० सिंह
अध्यक्ष, भौतिकी विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक (हरियाणा)

मंत्री —डॉ० राना प्रताप सिंह
व्याख्याता, बायोसाइंसेज विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक (हरियाणा)

कोषाध्यक्ष—डॉ० के० सी० कालरा
रीडर, रसायन विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक (हरियाणा)

डॉ० गोरख प्रसाद पुरस्कार घोषित

वर्ष 1989 प्रथम—श्री दर्शनानन्द
द्वितीय—डॉ० विजयकुमार श्रीवास्तव
तृतीय—डॉ० सीताराम सिंह 'पंकज'

वर्ष 1990 प्रथम—डॉ० डी० डी० ओझा
द्वितीय—श्री मनोज कुमार पटैरिया
तृतीय—डॉ० अंजू शर्मा

ह्विटेकर पुरस्कार घोषित

500 रुपयों का वर्ष 1990 का 'ह्विटेकर पुरस्कार', जो कनाडा के प्रो० वाई० पी० वार्ष्णेय द्वारा प्रदत्त 5000 रुपयों की राशि से चलाया जा रहा है, श्री राघवेन्द्र कृष्ण प्रताप, (बस्ती) एवं डॉ० श्रवण कुमार तिवारी (वाराणसी) को प्रदान किया गया है। पुरस्कार की राशि इन दोनों विजेताओं में बराबर-बराबर बाँट दी जायेगी।

'ह्विटेकर पुरस्कार' सम्बन्धी शुभ समाचार

500 रुपयों का 'ह्विटेकर पुरस्कार' प्रतिवर्ष डॉ० वाई० पी० वार्ष्णेय, प्रोफेसर, भौतिकी विभाग, आटवा विश्वविद्यालय, कनाडा द्वारा प्रदत्त 5000 रुपयों की राशि से वर्ष 1990 से प्रारम्भ हो गया है। प्रो० वार्ष्णेय लगभग 10 दिनों के लिए इलाहाबाद पधारे थे। डॉ० वार्ष्णेय विज्ञान परिषद् भी आये थे। उन्होंने आश्वासन दिया है कि कनाडा जाकर वे 5000 रुपयों की एक राशि 'ह्विटेकर पुरस्कार' के लिए और भेजेंगे। अतः अब 'ह्विटेकर पुरस्कार' के योजना के अन्तर्गत वर्ष 1991 से एक की जगह पाँच पाँच सौ रुपयों के दो पुरस्कार दो सर्वश्रेष्ठ लेखों पर प्रदान किए जायेंगे। 'विज्ञान' के सम्पादक ने प्रो० वार्ष्णेय का 'विज्ञान' पत्रिका के लिए साक्षात्कार भी लिया है जो 'विज्ञान' के किसी आगामी अंक में प्रकाशित किया जायेगा।

12वें जल गुणवत्ता जाँच पर प्रशिक्षण पाठ्यक्रम की संक्षिप्त रिपोर्ट

श्यामलाल माथुर

राष्ट्रीय पेयजल मिशन, ग्रामीण विकास विभाग, भारत सरकार के राष्ट्रीय कार्यक्रम के तहत् लोक कार्यक्रम और प्राद्योगिकी विकास परिषद् (कपार्ट), नई दिल्ली द्वारा प्रायोजित तथा विज्ञान परिषद् प्रयाग एवं पश्चिमी अंचल क्षेत्रीय केन्द्र, राष्ट्रीय पेयजल मिशन, रक्षा प्रयोगशाला, जोधपुर के संयुक्त तत्वावधान में विज्ञान परिषद् (इलाहाबाद) में '12वां जल गुणवत्ता जाँच पर प्रशिक्षण पाठ्यक्रम दिनांक 4-8 दिसम्बर, 1990 तक आयोजित किया गया। इस पाठ्यक्रम का आयोजन भारत के ग्रामीण क्षेत्रों की स्वयंसेवी संस्थाओं को स्वच्छ पेयजल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराने के लिए जल जाँच और व्यवस्था पर प्रशिक्षण प्रदान करना था। यह 12वां प्रशिक्षण गुणवत्ता जांच के प्रशिक्षण कार्यक्रमों की श्रृंखला में हिन्दीभाषियों के लिए विशेष पाठ्यक्रम बनाया गया था, जिसमें गंगा प्रदूषण निवारण के अतिरिक्त विज्ञान परिषद् की प्रदूषण दूर करने की भूमिका, प्रायोगिक प्रशिक्षण व फील्ड कार्य भी सम्मिलित थे।

प्रमुख विषयों के अन्तर्गत्त जल की रासायनिक व सूक्ष्मजीवीय जाँच, पेयजल के मानक, जल सम्बन्धित रोग, ग्रामीण जलदाय व्यवस्था से सम्बन्धित स्वास्थ्य व स्वच्छता की सीमाएँ और उसमें महिलाओं की भूमिका, रक्षा प्रयोगशाला द्वारा विकसित जल परीक्षण किट पर विशेष प्रशिक्षण, जल में विभिन्न प्रकार के प्रदूषण और शुद्धिकरण की विधियाँ तथा पेयजल व्यस्था पर बिचार-विमर्श आदि सम्मिलित थे।

पाठ्यक्रम का उद्घाट्न सत्र दिनांक 4 दिसम्बर 90 को सम्पन्न हुआ। उद्घाटन प्रो० टी० पती कुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने किया। गंगा परियोजना, इलाहाबाद के क्षेत्रीय निदेशक श्री पी०के० अग्रवाल (आई०ए०एस०) ने अध्यक्षीय भाषण दिया। प्रो० पी० सी० गुप्ता, उपाध्यक्ष, विज्ञान परिषद् प्रयाग (इलाहाबाद) ने स्वागत भाषण दिया तथा पश्चिमी अंचल क्षेत्रीय केन्द्र, राष्ट्रीय पेयजल मिशन, रक्षा प्रयोगशाला [जोधपुर] के प्रशिक्षण निदेशक एवं संयोजक डॉ० रामगोपाल ने पाठ्यक्रम एवं उसकी उपयोगिता के बारे में जानकारी दी। 'कपार्ट' के वरिष्ठ निदेशक श्री एस० एस० मचवल ने 'कपार्ट' के उद्देश्य, गतिविधियाँ एवं राष्ट्रीय पेयजल मिशन के अन्तर्गत किये गये कार्यों का अपने भाषण में उल्लेख किया। प्रो० शिवगोपाल मिश्र (विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद) ने विज्ञान परिषद् की प्रदूषण निवारण में भूमिका की चर्चा करते हुए धन्यवाद भाषण किया। उद्घाटन सत्र में 'कपार्ट' के उपनिदेशक श्री सी० मिन्ज भी उपस्थित रहे।

12वें जल गुणवत्ता के जाँच प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के दौरान देश के विभिन्न क्षेत्रों से आये स्वयंसेवी संगठनों के लगभग 40 प्रशिक्षणार्थियों को लाभान्वित किया गया। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के अन्तिम सत्र में दिनांक 8 दिसम्बर, 90 को समस्त प्रशिक्षणार्थियों को तकनीकी भ्रमण हेतु जल-निगम, इलाहाबाद, जल स्रोतों, जल संस्थान और जल शोधन संयंत्रों की कार्य प्रणाली तथा स्वच्छ जल का रख-रखाव एवं वितरण के बारे में प्रायोगिक जानकारी देने हेतु भ्रमण हेतु ले जाया गया।

वैज्ञानिक, सहायक टेक्नॉलोजी मिशन, रक्षा प्रयोगशाला, जोधपुर, 342001 (राजस्थान)

प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के दौरान जल गुणवत्ता जाँच पर निम्नलिखित अधिकारियों, **वैज्ञानिकों ने** व्याख्यान एवं प्रशिक्षण (प्रायोगिक) दिया—

(1) **डॉ० रामगोपाल**	—	पाठ्यक्रम निदेशक व उपनिदेशक, रक्षा प्रयोगशाला (जोधपुर)
(2) **डॉ० पी० के० घोष**	—	वैज्ञानिक, रक्षा प्रयोगशाला (जोधपुर)
(3) **डॉ० (श्रीमती) सुशीला राय**	—	वैज्ञानिक, रक्षा प्रयोगशाला (जोधपुर)
(4) **श्री पी० के० अग्रवाल**	—	क्षेत्रीय निदेशक, गंगा परियोजना (इलाहाबाद)
(5) **श्री भट्ट**	—	व्याख्याता राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय (इलाहाबाद)
(6) **श्री महेन्द्र सिंह**	—	अधिशासी अभियन्ता, जल निगम (इलाहाबाद)
(7) **स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती**	—	विज्ञान परिषद् (इलाहाबाद)
(8) **श्री पी० सी० श्रीवास्तव**	—	संपादक "विज्ञान", विज्ञान परिषद् (इलाहाबाद)
(9) **श्री दर्शनानन्द**	—	निवर्तमान उपनिदेशक उद्यान (इलाहाबाद)

प्रायोगिक टीम

(1) **डॉ० रामगोपाल**	—	उपनिदेशक, रक्षा प्रयोगशाला (जोधपुर)
(2) **डॉ० पी० के० घोष**	—	वैज्ञानिक, रक्षा प्रयोगशाला (जोधपुर)
(3) **डॉ० श्रीमती सुशीला राय**	—	वैज्ञानिक, रक्षा प्रयोगशाला (जोधपुर)
(4) **श्री श्याम लाल माथुर**	—	वैज्ञानिक (टी० एम०), रक्षा प्रयोगशाला (जोधपुर)
(5) **श्री कुशाल सिंह भाटी**	—	लैब अटेन्डेन्ड (टी० एम०), रक्षा प्रयोगशाल (जोधपुर)

पाठ्यक्रम का समापन समारोह दिनांक 8 दिसम्बर, 1990 को सम्पन्न हुआ जिसकी अध्यक्षता **प्रो० आर० डी० तिवारी**, निवर्तमान अध्यक्ष, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय (इलाहाबाद) ने की। समापन सत्र के दौरान **प्रो० एच० पी० तिवारी**, प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् एवं विभागाध्यक्ष, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, प्रो० **पी० सी० गुप्ता**, उपाध्यक्ष विज्ञान परिषद्, **डॉ० रामगोपाल**, पाठ्यक्रम निदेशक एवं उपनिदेशक 'कपार्ट' **श्री सी० मिन्ज** ने भाग लिया। प्रो० पी० सी० गुप्ता, श्री पी० के० अग्रवाल और श्री सी० मिन्ज को जल मिशन के मोमेन्टोज द्वारा सम्मानित किया गया। समापन सत्र के अन्त में सभी प्रशिक्षणार्थियों को प्रशस्ति-पत्र समारोह अध्यक्ष प्रो० आर० डी० तिवारी द्वारा वितरित किये गये। समापन सत्र के दौरान कुछ प्रशिक्षणार्थियों ने स्वेच्छा से मंच पर आकर जल गुणवत्ता जाँच प्रशिक्षण कार्यक्रम की सार्थकता बतलाते हुए कहा कि यह प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रायोगिक, शैक्षणिक, व्यवहारिक, शिक्षाप्रद एवं बहुत ही उपयोगी रहा है तथा भविष्य में भी इस प्रकार के कार्यक्रम समय-समय पर आयोजित किये जाने चाहिये, जिससे प्रशिणार्थियों के माध्यम से देश की ग्रामीण व शहरी जनता को पेयजल के बारे में विस्तृत जानकारी मिल सके। इस सत्र के दौरान 'कपार्ट' के श्री सी० मिन्ज ने प्रशिक्षणार्थियों, रक्षा प्रयोगशाला, जोधपुर तथा विज्ञान परिषद् प्रयाग (इलाहाबाद) को सफल आयोजन हेतु धन्यवाद दिया। इस सम्पूर्ण पाठ्यक्रम के समय प्रशिक्षणार्थियों के आने-जाने, रहने, खाने-पीने, तकनीकी भ्रमण, शैक्षणिक व प्रायोगिक परीक्षण आदि का समस्त खर्च 'कपार्ट' द्वारा वहन किया गया। समापन सत्र के अन्त में डॉ० रोमगोपाल, प्रशिक्षण निदेशक एवं संयोजक, पश्चिमी अंचल क्षेत्रीय केन्द्र, राष्ट्रीय पेयजल मिशन, रक्षा प्रयोगशाला (जोधपुर) ने अपने धन्यवाद भाषण में विज्ञान परिषद् प्रयाग के समस्त कार्यकारी पदाधिकारियों, सदस्यों और कर्मचारियों, रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, सभी वक्ताओं सहित संकाय और 'कपार्ट' को सफल आयोजन हेतु बधाई दी।

□□

प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के दौरान जल गुणवत्ता जाँच पर निम्नलिखित अधिकारियों, वैज्ञानिकों ने व्याख्यान एवं प्रशिक्षण (प्रायोगिक) दिया—

(1) डॉ० रामगोपाल	—	पाठ्यक्रम निदेशक व उपनिदेशक, रक्षा प्रयोगशाला (जोधपुर)
(2) डॉ० पी० के० घोष	—	वैज्ञानिक, रक्षा प्रयोगशाला (जोधपुर)
(3) डॉ० (श्रीमती) सुशीला राय	—	वैज्ञानिक, रक्षा प्रयोगशाला (जोधपुर)
(4) श्री पी० के० अग्रवाल	—	क्षेत्रीय निदेशक, गंगा परियोजना (इलाहाबाद)
(5) श्री भट्ट	—	व्याख्याता राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय (इलाहाबाद)
(6) श्री महेन्द्र सिंह	—	अधिशासी अभियन्ता, जल निगम (इलाहाबाद)
(7) स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	—	विज्ञान परिषद् (इलाहाबाद)
(8) श्री पी० सी० श्रीवास्तव	—	संपादक "विज्ञान", विज्ञान परिषद् (इलाहाबाद)
(9) श्री दर्शनानन्द	—	निवर्तमान उपनिदेशक उद्यान (इलाहाबाद)

प्रायोगिक टीम

(1) डॉ० रामगोपाल	—	उपनिदेशक, रक्षा प्रयोगशाला (जोधपुर)
(2) डॉ० पी० के० घोष	—	वैज्ञानिक, रक्षा प्रयोगशाला (जोधपुर)
(3) डॉ० श्रीमती सुशीला राय	—	वैज्ञानिक, रक्षा प्रयोगशाला (जोधपुर)
(4) श्री श्याम लाल माथुर	—	वैज्ञानिक (टी० एम०), रक्षा प्रयोगशाला (जोधपुर)
(5) श्री कुशाल सिंह भाटी	—	लैब अटेन्डेन्ड (टी० एम०), रक्षा प्रयोगशाल (जोधपुर)

पाठ्यक्रम का समापन समारोह दिनांक 8 दिसम्बर, 1990 को सम्पन्न हुआ जिसकी अध्यक्षता प्रो० आर० डी० तिवारी, निवर्तमान अध्यक्ष, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय (इलाहाबाद) ने की। समापन सत्र के दौरान प्रो० एच० पी० तिवारी, प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् एवं विभागाध्यक्ष, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, प्रो० पी० सी० गुप्ता, उपाध्यक्ष विज्ञान परिषद्, डॉ० रामगोपाल, पाठ्यक्रम निदेशक एवं उपनिदेशक 'कपार्ट' श्री सी० मिन्ज ने भाग लिया। प्रो० पी० सी० गुप्ता, श्री पी० के० अग्रवाल और श्री सी० मिन्ज को जल मिशन के मोमेन्टोज द्वारा सम्मानित किया गया। समापन सत्र के अन्त में सभी प्रशिक्षणार्थियों को प्रशस्ति-पत्र समारोह अध्यक्ष प्रो० आर० डी० तिवारी द्वारा वितरित किये गये। समापन सत्र के दौरान कुछ प्रशिक्षणार्थियों ने स्वेच्छा से मंच पर आकर जल गुणवत्ता जाँच प्रशिक्षण कार्यक्रम की सार्थकता बतलाते हुए कहा कि यह प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रायोगिक, शैक्षणिक, व्यवहारिक, शिक्षाप्रद एवं बहुत ही उपयोगी रहा है तथा भविष्य में भी इस प्रकार के कार्यक्रम समय-समय पर आयोजित किये जाने चाहिये, जिससे प्रशिणार्थियों के माध्यम से देश की ग्रामीण व शहरी जनता को पेयजल के बारे में विस्तृत जानकारी मिल सके। इस सत्र के दौरान 'कपार्ट' के श्री सी० मिन्ज ने प्रशिक्षणार्थियों, रक्षा प्रयोगशाला, जोधपुर तथा विज्ञान परिषद् प्रयाग (इलाहाबाद) को सफल आयोजन हेतु धन्यवाद दिया। इस सम्पूर्ण पाठ्यक्रम के समय प्रशिक्षणार्थियों के आने-जाने, रहने, खाने-पीने, तकनीकी भ्रमण, शैक्षणिक व प्रायोगिक परीक्षण आदि का समस्त खर्च 'कपार्ट' द्वारा वहन किया गया। समापन सत्र के अन्त में डॉ० रोमगोपाल, प्रशिक्षण निदेशक एवं संयोजक, पश्चिमी अंचल क्षेत्रीय केन्द्र, राष्ट्रीय पेयजल मिशन, रक्षा प्रयोगशाला (जोधपुर) ने अपने धन्यवाद भाषण में विज्ञान परिषद् प्रयाग के समस्त कार्यकारी पदाधिकारियों, सदस्यों और कर्मचारियों, रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, सभी वक्ताओं सहित संकाय और 'कपार्ट' को सफल आयोजन हेतु बधाई दी।

□□

परिषद् की रोहतक शाखा से राष्ट्रीय विज्ञान शोध गोष्ठी

'द्रव्य की ठोस अवस्था' पर शोध गोष्ठी की संक्षिप्त रिपोर्ट

डॉ० ओम प्रभात अग्रवाल

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के तत्वाधान में 9-10 मार्च 1991 को द्रव्य की ठोस अवस्था विषय पर एक द्विदिवसीय राष्ट्रीय विज्ञान शोध गोष्ठी महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा) के भौतिकी विभाग में आयोजित की गयी। इस गोष्ठी के संयोजक **डॉ० सुरेन्द्र पाल सिंह**, प्रोफेसर भौतिकी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक तथा सहसंयोजक **डॉ० अशोक कुमार शर्मा**, रीडर भौतिकी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक थे। **डॉ० ओम प्रभात अग्रवाल**, प्रोफेसर रसायन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक ने इस शोध गोष्ठी के आयोजन में परामर्शदाता के रूप में महत्वपूर्ण योगदान दिया। गोष्ठी में देश के नौ राज्यों, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान एवं महाराष्ट्र से प्राप्त 28 शोध पत्रों को सम्मिलित किया गया जिनमें से 21 वैज्ञानिकों ने गोष्ठी में स्वयं उपस्थित होकर विचार-विमर्श में भाग लिया। गोष्ठी में शोधपत्र प्रस्तुत करने वाले वैज्ञानिक इस प्रकार थे :—

1. **प्रो० राजमंगल प्रसाद जायसवाल**, भौतिकी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र।
2. **प्रो० विट्ठल कुमार फरक्या**, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर।
3. **प्रो० रामेश्वर नाथ**, सागर विश्वविद्यालय, सागर।
4. **प्रो० थानेश्वर प्रसाद शर्मा**, मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ।
5. **डॉ श्रवण कुमार तिवारी**, हिन्दी कक्ष, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
6. **प्रो० योगेन्द्र मोहन गुप्त**, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर।
7. **प्रो० लक्ष्मीकान्त सिंह**, अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद।
8. **डॉ० अरुण प्रताप**, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
9. **प्रो० केवशचन्द्र शर्मा**, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला।
10. **डॉ० जगदीश चन्द्र उपाध्याय**, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।
11. **डॉ० रामकिशोर**, राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, नई दिल्ली।
12. **डॉ० सुनील चौधरी**, युनिवर्सिटी कॉलेज, रोहतक।
13. **डॉ० सुरेन्द्र पाल सिंह**, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक।
14. **प्रो० रामदुलार सिंह**, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक।
15. **प्रो० विपिन प्रकाश सेठ**, म० द० वि०, रोहतक।
16. **डॉ० अशोक कुमार शर्मा**, म० द० वि०, रोहतक।
17. **डॉ० देवेन्द्र नासा**, म० द० वि०, रोहतक।
18. **श्री अरुण गौड़**, म० द० वि०, रोहतक।
19. **डॉ० नत्थी सिंह**, म० द० वि०, रोहतक।
20. **डॉ० कृष्ण गोपाल अग्रवाल**, म० द० वि०, रोहतक।
21. **डॉ० प्रेमसागर गोयल**, भाभा परमाणु अनुसंधान संस्थान, बम्बई।

उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता एवं उद्घाटन महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय के कुलपति **ब्रिगेडियर ओ० पी० चौधरी** ने किया। उद्घाटन सत्र का शुभारंभ करते हुये **डॉ० ओम प्रभात अग्रवाल** ने गोष्ठी की पृष्ठभूमि से अतिथियों का परिचय कराया। सम्मेलन

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, रसायन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

द्वारा आयोजित की जा रही ऐसी शोध गोष्ठियों के इतिहास को स्रोताओं के समक्ष रखते हुये उन्होंने मत प्रकट किया कि अब देश में वैज्ञानिकों का ऐसा अच्छा खासा वर्ग है जिसकी धारणा है कि मौलिक चिंतन एवं उसका प्रभावी सम्प्रेषण स्वभाषा में ही सम्भव है— अंग्रेजी में नहीं। और इसीलिये अंग्रेजी का व्यामोह तोड़ना आवश्यक है। देश में आयोजित हो रही अन्य ऐसी गोष्ठियों की चर्चा करते हुये उन्होंने विचार प्रकट किया कि यह धारणा अब धीरे-धीरे आन्दोलन का रूप लेती जा रही है। डॉ० अग्रवाल ने यह भी आशा प्रकट की कि सम्मेलन ऐसी शोध गोष्ठियों की शृंखला में नई कड़ियाँ जोड़ता रहेगा और अंग्रेजी परस्तों द्वारा अत्यन्त चतुराई एवं मेहनत से बनाये गये भ्रम के इस किले को पूर्ण रूप से ध्वस्त करने में सफल होगा कि वैज्ञानिक शोध की बातें हिन्दी में की ही नहीं जा सकती। इस गोष्ठी के संयोजक डॉ० सुरेन्द्र पाल सिंह ने विशिष्ट अतिथियों का परिचय देते हुए द्रव्य की ठोस अवस्था का महत्त्व समझाया। उन्होंने ठोस द्रव्य से बने ट्रांजिस्टर के आविष्कार से लेकर आज के वैज्ञानिक जगत् में हो रहे अतिचालकता तक के शोध-कार्यों का संक्षिप्त परिचय दिया। उन्होंने ठोस द्रव्य से बनी विभिन्न वस्तुओं के उपयोग से समाज में हो रही क्रान्ति का भी उल्लेख किया।

इलाहाबाद से पधारे हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के प्रधानमन्त्री श्री **श्रीधर शास्त्री** ने आये हुए सभी शोध-वैज्ञानिक तथा अतिथियों का स्वागत किया तथा सम्मेलन के इस निश्चय को दोहराया कि उच्च विज्ञान के क्षेत्र में भी हिन्दी को उसका उचित स्थान दिलाने में अनवरत प्रयास करता रहेगा।

माननीय ब्रिगेडियर ओ० पी० चौधरी ने उद्घाटन भाषण में इस तरह की गोष्ठी को आयोजित करने की प्रशंसा की और कहा कि ऐसा कोई कारण नहीं कि हम हिन्दी माध्यम से विज्ञान न समझ सकें। यद्यपि प्रारम्भ में अवश्य अटपटा लग सकता है। भूतपूर्व निदेशक **डॉ० अजितराम वर्मा**, राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, नई दिल्ली ने "हीरा-एक विलक्षण पदार्थ" विषय पर एक बहुत ही रोचक भाषण दिया जिसमें आपने हीरों के ऐसे गुणों की चर्चा की जो दूसरे किसी पदार्थ में नहीं पाये जाते। राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, दिल्ली में हीरा पर हो रहे विभिन्न शोध-कार्यों का भी आपने उल्लेख किया। आपने बताया कि हीरा तो प्रकृति द्वारा 200 करोड़ वर्ष पुराना लिखा एक ऐसा पत्र है जो पृथ्वी के गर्भ में दबा पड़ा है तथा उसके माध्यम से प्रकृति के रहस्यों को उद्घाटित करना ही आज के ही शोध कर्ता का लक्ष्य है। उद्घाटन सत्र गोष्ठी के सहसंयोजक **डॉ० अशोक कुमार शर्मा** द्वारा, आमंत्रित अतिथियों के प्रति धन्यवाद प्रस्ताव से समाप्त हुआ।

9 मार्च को उपराह्न $2\frac{1}{2}$ बजे प्रथम शोध-पत्र वाचन सत्र प्रारम्भ हुआ। इस सत्र की अध्यक्षता **प्रो० थानेश्वर प्रसाद शर्मा**, भौतिकी विभाग, मेरठ विश्वविद्यालय ने की। इस सत्र में कुल चार शोधपत्र प्रस्तुत किये गये।

दूसरा सत्र 10 मार्च प्रातः 10 बजे प्रारम्भ हुआ। इस सत्र की अध्यक्षता कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग के **प्रो० राजमंगल प्रसाद जायसवाल** ने की तथा 6 शोधपत्र प्रस्तुत किये गये। तृतीय सत्र 10 मार्च को अपराह्न $2\frac{1}{2}$ बजे प्रारम्भ हुआ जिसकी अध्यक्षता हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग के **प्रो० केशवचन्द्र शर्मा** ने की। इस सत्र में 8 शोधपत्र पढ़े गये। प्रत्येक शोधपत्र पर गम्भीर परिचर्चा हुयी।

समापन सत्र में बोलते हुए प्रोफेसर ओम प्रभात अग्रवाल ने इतनी सफल गोष्ठी के लिए प्रतिभागियों को बधाई दी तथा विश्वास प्रकट किया कि निकट भविष्य में ही सम्मेलन अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर लेगा। साथ ही शोधपत्रों के प्रस्तुतिकरण के दौरान प्रकाश में आई कुछ त्रुटियों को रेखांकित करते हुए उन्होंने आशा प्रकट की कि भविष्य में आदर्श वाचन संभव हो सकेगा। अंत में श्री श्रीधर शास्त्री ने प्रतिभागियों को धन्यवाद दिया और अगले कार्यक्रम की रूप रेखा प्रस्तुत की। उन्होंने इस बात की भी घोषणा की कि इस गोष्ठी में प्रस्तुत किये गये दो शोध-पत्रों पर बाद में एक-एक हजार रुपये का पुरस्कार दिया जायेगा।

डॉ० गोरखप्रसाद स्मृति व्याख्यान

8 दिसम्बर 1990 को विज्ञान परिषद् के सभागार में 'डॉ० गोरखप्रसाद स्मृति व्याख्यानमाला' का प्रथम व्याख्यान स्वामी डॉ० सत्य प्रकाश सरस्वती ने दिया। स्वामीजी ने डॉ० गोरखप्रसाद जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए उनकी सेवाओं—विशेषरूप से विज्ञान परिषद् की विभिन्न पदों पर रहते हुए दीर्घकालीन सेवाओं—की चर्चा की। इस व्याख्यान माला के लिए स्व० डॉ० गोरखप्रसाद जी के सुपुत्र डॉ० चन्द्रिका प्रसाद और दौहित्र अरुण कुमार ने क्रमश: 15,000 एवं 5000 रुपयों की राशियाँ परिषद् को प्रदान कीं। इस अवसर पर रक्षा प्रयोगशाला (जोधपुर), 'कपार्ट' नई दिल्ली के अधिकारी और देश के विभिन्न अंचलों से आये विद्वान उपस्थित थे। परिषद् के प्रधानमंत्री प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी ने सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की।

विज्ञान अनुसंधान गोष्ठी सम्पन्न

78वें भारतीय विज्ञान कांग्रेस अधिवेशन की पूर्व संध्या पर 2 जनवरी को देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर परिसर में 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' (इलाहाबाद) द्वारा आयोजित 'विज्ञान अनुसंधान गोष्ठी' के अवसर पर **प्रो० महेन्द्र सिंह सोडा** (कुलपति, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर) ने 'भूमिगत संरचनाओं से ऊष्मान्तरण' विषय पर अपना विद्वतापूर्ण अध्यक्षपदीय व्याख्यान दिया। सभा को सम्बोधित करते हुए प्रो० सोडा ने बताया कि भूमिगत भवन, निर्मित भवन, तहखाना, शीतल भंडार, बायोगैस संयन्त्र, पाइप लाइन, भूमिगत रेलवे लाइन जैसी भूमिगत संरचनाओं के ऊष्मिक मूल्यांकन के लिए संरचना एवं भूमि से ऊष्मान्तरण का प्राक्कलन आवश्यक है। उन्होंने विभिन्न आकृति की संरचनाओं और भूमि की सतह से ताप की स्थायी और कालिक अवस्थाओं के लिए ऊष्मान्तरण का प्राक्कलन करने में प्रयोग की जाने वाली तरह-तरह की वैश्लेषिक और प्रायोगिक अनुरूपक विधियों के विषय में विवेचनात्मक विचार प्रस्तुत किए। इस संगोष्ठी में विज्ञान परिषद् के उपसभापति **प्रो० पी० सी० गुप्ता**, प्रधानमन्त्री **प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी, डॉ० हरिहर मिश्र, डॉ० अशोक महान** आदि ने भी भाग लिया। इनके अतिरिक्त डॉ० आर० बी० सिंह (लखनऊ), डॉ० सूर्य नारायण ठाकुर (वाराणसी), डॉ० शिव सत्य प्रकाश (पटना), डॉ० अखिलेश चन्द्र वर्मा (पटना), डॉ० मनोहर मो० मोघे (मुंबई), डॉ० गिरिजेश गोविल (मुंबई), श्रीमती करुणा शर्मा (इन्दौर), डॉ० सीता मोनावत (इन्दौर), कु० शशिप्रभा आर्य (इन्दौर), श्रीमती प्रगति देसाई (उज्जैन), डॉ० अनिमेष कुमार घोष (वाराणसी), डॉ० तूलिका घोष (वाराणसी), कु० तंद्रा घोष (वाराणसी), डॉ० आर० के० मिश्र (नैनीताल), डॉ० यू० डी० एन० बाजपेयी (जबलपुर) आदि ने भी भाग लिया। प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी ने कृतज्ञता ज्ञापित की।

विज्ञान परिषद् में प्रो० धर जन्म दिन समारोह सम्पन्न

2 जनवरी को **स्वर्गीय प्रोफेसर नीलरत्नधर का जन्म दिन मनाया गया।** प्रो० धर विज्ञान परिषद् के पूर्व सभापति एवं अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के मृदा रसायनज्ञ थे। इस अवसर पर देश के चोटी के रसायन-विज्ञानी और आर्य समाज के नेता स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी ने प्रो० धर के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए प्रो० धर से सम्बन्धित अनेक स्मृतियाँ और प्रेरक प्रसंग सुनाये। 'विज्ञान' पत्रिका के सम्पादक प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने उनके सादे जीवन और सहज अभिव्यक्ति सम्बन्धी व्यक्तिगत अनुभव की चर्चा की। शीलाधर मृदा विज्ञान संस्थान के वर्तमान निदेशक डॉ० शिवगोपाल मिश्र जी ने प्रो० धर द्वारा मृदा रसायन विज्ञान के क्षेत्र में किए गए अनुसन्धानों की उपयोगिता एवं प्रासंगिकता पर विश्लेषणात्मक विचार व्यक्त किए। इनके अतिरिक्त अन्य वक्ताओं ने भी अपने-अपने संस्मरण सुनाये। अंत में प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने सभी वक्ताओं और श्रोताओं के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की।

वर्तमान युद्ध का पर्यावरण पर प्रभाव विषय पर विचार गोष्ठी सम्पन्न

5 फरवरी को परिषद् द्वारा आयोजित विचार-गोष्ठी का प्रवर्तन करते हुए 'विज्ञान' पत्रिका के सम्पादक प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने बताया कि वर्तमान खाड़ी युद्ध से जहाँ जान-माल की हानि हो रही है वहीं पर्यावरण पर भी कुप्रभाव पड़ रहा है। बमबारी से उठे धुयें से वायुप्रदूषण क्षेत्र विशेष में अत्यधिक बढ़ा है। सऊदी अरब में इससे काली वर्षा भी हुई। उस क्षेत्र के सागर में तेल के फैलाव से जल पक्षियों, मछलियों यथा डॉल्फिन, मिकसील आदि के बचने की उम्मीद नहीं रही। यही नहीं, मरु चिंकारा, सऊदी

चिकारा, कुवैती भेड़िया, सऊदी अरब का तेंदुआ, सिनाई तेंदुआ, एशियाई चीता, सील मछली आदि विलुप्तीकरण के कगार पर पहुँच गए हैं। ताप के एका एक बढ़ जाने से मौसम प्रभावित हुआ है। कार्बन डाइऑक्साइड और सल्फर डाइऑक्साइड आदि गैसों की हवा में अत्यधिक मात्रा के कारण ओजोन पर्त को भी ख़तरा बढ़ गया है। उन्होंने वक्ताओं से अपनी रुचि के पक्ष पर बोलने का निवेदन किया। डॉ० मुरारी मोहन वर्मा ने खाड़ी युद्ध की पृष्ठभूमि और युद्ध से उत्पन्न विभिषिका की ओर ध्यान केन्द्रित किया। श्री दिनेशमणि का कहना था कि सर्वाधिक छति तेल के सागर में फैलाव से हो रहा है। श्री विजय-कुमार के अनुसार मानव शरीर पर प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगे हैं। आँखों की बीमारी, त्वचा रोग, समय से पहले बच्चों का पैदा होना आदि प्रभाव दिख रहे हैं। श्री प्रमोद कुमार के अनुसार युद्ध के प्रभाव से अरब वातावरण में ताप बढ़ रहा है। इससे पर्यावरण असंतुलन होगा। अफसोस की बात तो यह है कि अमेरिका और ब्रिटेन जैसे देश ही ऐसा कर रहे हैं जो पर्यावरण के प्रति अत्यधिक चितत थे। फादर यसुदास ने युद्ध समाप्त किए जाने की अपील की ताकि मानव इस संसार के समस्त जीव-जन्तुओं और वनस्पतियों के साथ शांतिपूर्वक रह सके। श्री राजीव दीक्षित ने आँकड़ों के साथ बलपूर्वक सिद्ध किया कि खाड़ी युद्ध मल्टी नेशनल कम्पनियों द्वारा अपने युद्ध सामग्री की बिक्री के लिए शुरू किया गया विधिवत अभियान है। इसका सामना हमें मल्टीनेशनल कम्पनियों द्वारा निर्मित सामानों का बहिष्कार करके करना चाहिए। श्री सतीश कुमार कुशवाहा ने नर्मदा घाटी परियोजना से सम्भावित पर्यावरण क्षति की चर्चा की और खाड़ी युद्ध की विभिषिका के प्रति चेतावनी दी। डॉ० पद्मा सिंह ने इसे अमेरिका का दुश्चक्र बताया। विचार-गोष्ठी के अध्यक्ष स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी ने विस्तार से खाड़ी युद्ध की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला और युद्ध का कारण मानव का लोभ बताया। स्वामी जी का मानना है कि जब तक मनुष्य अपनी इच्छाओं, अपने लोभ पर नियंत्रण नहीं करेगा तब तक विज्ञान के वरदानों को अभिशापों में बदलता रहेगा जबकि विज्ञान मानव को सत्य का दर्शन कराता है। उन्होंने विज्ञान को आध्यात्म के साथ जोड़ने पर बल दिया। इनके अतिरिक्त इस विचार गोष्ठी में डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी, डॉ० शिव गोपाल मिश्र, डॉ० आर० एस० डी० दुबे, डॉ० के० एन० तिवारी, डॉ० जगदीश सिंह चौहान, डॉ० विमलेशचन्द्र श्रीवास्तव, डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव, सर्वश्री कमलेश कुमार ओझा, राजेश केसरी, अवधेश कुमार पाण्डेय, दिलीप कुमार, पी० के० पुजारी, अनिल कुमार सिंह, शैलेन्द्र कुमार श्रीवास्तव आदि ने भी भाग लिया। अन्त में प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की और इस विषय पर लेख आमंत्रित करते हुए यह सूचना दी कि 'विज्ञान' पत्रिका का एक अंक इसी विषय पर निकलेगा।

कहानी संग्रह का विमोचन

22 मार्च 1991 को विज्ञान परिषद् में **स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वतीजी** द्वारा स्वर्गीया **श्रीमती सरोज बाला श्रीवास्तव** के कहानी संग्रह **'रोती जिन्दगी मुस्कराती मौत'** का विमोचन हुआ। दिवंगत लेखिका की प्रथम पुण्य स्मृति के अवसर पर बोलते हुए स्वामी सत्यप्रकाश जी ने बताया कि लेखिका ने स्वामी दयानन्द सरस्वती की जन्मशती के अवसर पर डॉ० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान के लिए 'स्वामी दयानन्द और प्राचीन परम्पराएँ' नामक पुस्तक लिखी थी। वर्तमान कहानी संग्रह में 13 कहानियाँ संकलित हैं जो लेखिका के सशक्त व्यक्तित्व और आदर्शोन्मुख सोच की संतानें हैं। इसका सम्पादन लेखिका के पति **डॉ० ए० एन० श्रीवास्तव** ने किया है। कहानियों के सम्बन्ध में **मधुलिका लक्ष्मी** ने लिखा है। स्वामी जी के अतिरिक्त इस अवसर पर **प्रो० पूर्णचन्द्र** गुप्ता, **डॉ० शिवगोपाल मिश्र, प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव, डॉ० ए० एल०** श्रीवास्तव, **श्रीमती मंजुलिका लक्ष्मी, डा० ए० के०** गुप्ता, **श्री भगवती प्रसाद**, श्री अमिताभ आदि भी उपस्थित थे।

—प्रस्तुतिः **प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव**

विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा आयोजित अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता 1991

व्हिटेकर पुरस्कार

दो सर्वश्रेष्ठ लेखों को पाँच-पाँच सौ रुपयों के दो पुरस्कार

शर्तें

(1) लेख विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
(2) केवल प्रकाशित लेखों पर ही विचार किया जायेगा।
(3) लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है।
(4) प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
(5) इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख जनवरी 1991 से दिसम्बर 1991 माह के बीच प्रकाशित हो।
(6) लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख मौलिक है।
(7) विज्ञान परिषद् के सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।
(8) वर्ष 1991 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 15 मार्च 1992 है।

लेख निम्न पते पर भेजें—

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

संपादक 'विज्ञान', विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय पाठकगण !

लगभग तीन माह के अंतराल के बाद 'विज्ञान' का अप्रैल 1991 अंक आपके हाथों में देते हुए प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। प्रसन्नता इस बात की कि 'विज्ञान' ने अपने जीवन के 76 सार्थक वर्ष पूरे कर लिए हैं और 77वें वर्ष में प्रविष्ट हो गई है। ऐसा आपके सहयोग, आपकी शुभकामनाओं और आपके आशीर्वाद से ही संभव हुआ है। पत्रिका आगे भी विज्ञान और राष्ट्र भाषा हिन्दी की सेवा करती रहेगी।

o o o

कुछ शुभ समाचार भी हैं। कनाडा के आटवा विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग के प्रोफेसर डॉ० वाई० पी० वार्ष्णेय पिछले दिनों इलाहाबाद आये थे। आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग में प्राध्यापक भी रह चुके हैं। भौतिकी के विद्यार्थी आपके नाम से परिचित हैं। 'वार्ष्णी इक्वेशन' और और 'वार्ष्णी पोटेंशियल' पाठ्यपुस्तकों के अंग बन चुके हैं। विज्ञान परिषद् में 'ह्विटेकर पुरस्कार' की स्थापना आपके द्वारा दिए गए 5000 रुपयों की राशि से ही की गई है। इस पुरस्कार के लिए आपने 5000 रुपयों की एक और राशि देने का आश्वासन दिया है और अब 'ह्विटेकर पुरस्कार' वर्ष 1991 से 500 रुपयों के एक पुरस्कार के स्थान पर पाँच-पाँच सौ रुपयों के दो पुरस्कार दो सर्वोत्तम लेखों पर दिए जायेंगे। डॉ० वार्ष्णेय ने 'विज्ञान' पत्रिका के स्तर में सुधार के लिए एक स्थाई निधि स्थापित करने का सुझाव दिया और अपनी ओर से 10,000 रुपये की एक राशि देने का भी आश्वासन दिया है।

आपकी पत्रिका 'विज्ञान' के सम्पादक ने डॉ० वार्ष्णेय के इलाहाबाद प्रवास का लाभ उठाते हुए उनका साक्षात्कार भी लेखनीबद्ध कर रखा है, जिसे 'विज्ञान' के किसी आगामी अंक में प्रकाशित भी किया जायेगा।

o o o

एक और अच्छी खबर। स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी को आगरा की एक संस्था ने उनकी विज्ञान और हिन्दी विज्ञान लेखन की विशिष्ठ सेवाओं के लिए 10,000 रुपयों के पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया है। यह पुरस्कार भारत के उपराष्ट्रपति द्वारा 19 अप्रैल को दिल्ली में प्रदान किया जायेगा। स्वामी जी ने विज्ञान परिषद् प्रयाग, डॉ० गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद संग्रहालय, विभिन्न आर्य समाज और आर्य संस्थाओं के सौजन्य से एक अन्तर्राष्ट्रीय वेद संगोष्ठी (मई 10-12) आयोजित की है। विषय है 'वेद प्रतिपादित युद्ध और शांति'।

o o o

'विज्ञान' के जनवरी-मार्च 1991 संयुक्तांक 'बदलता पर्यावरण' के प्रकाशन के बाद विज्ञान परिषद् में स्थानीय स्तर पर अनेक विचार गोष्ठियाँ आयोजित की गईं। इसकी एक झलक आपको 'परिषद् का पृष्ठ' के अन्तर्गत मिलेगी। वर्ष 1989 और 1990 का 'डॉ० गोरख प्रसाद पुरस्कार' और वर्ष 1990 का 'ह्विटेकर पुरस्कार' घोषित हो चुका है। विजेताओं को बधाईयाँ।

o o o

हाँ, एक विशेष सूचना भी। जन मानस में पर्यावरण के प्रति चेतना जाग्रत करने से उद्देश्य से 'विज्ञान' पत्रिका में पर्यावरण से सम्बन्धित बहुत से लेख प्रकाशित किये गये हैं। अब हम अपनी नीति में थोड़ा परिवर्त्तन करना चाहते हैं। इसमें आप सभी का सहयोग अपेक्षित है। अब हम मॉलीकुलर बायलोजी और जेनेटिक इंजीनियरी से सम्बन्धित लेखों के प्रकाशन पर विशेष बल देना चाहते हैं। अतएव लेखकों से मेरा विनम्र निवेदन है कि वे उपर्युक्त विषयों पर नई जानकारियों से युक्त लेख भेजें। पर इसका यह मतलब नहीं कि अन्य विषयों की उपेक्षा होगी। आपको जो भी वैज्ञानिक जानकारी नई लगे, उस पर हमें अवश्य लेख भेजें।

शुभ कामनाओं सहित।
आपका
प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है, यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र यदि किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिये नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिंतापरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिये। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन की दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 200.00 रु०, आधा पृष्ठ 100.00 रु०; चौथाई पृष्ठ 50.00; आवरण द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ 500.00 रु०।

मूल्य

आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत; 500 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 60 रु०
वार्षिक : 25 रु०
प्रति अंक : 2 रु० 50 पैसे

प्रेषक : विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002